नवयुग 'बाल-साहित्य' माला

बाल-कादम्बरी

प्राचीन संस्कृत-उपन्यास से

लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज एम. ए., साहित्यरत्न

द्वारा

छात्रों के लिए हिंदी में पुनःकथित

चित्रकार—श्रीईश्वरदास

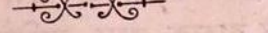

प्रकाशक

(राजा) रामकुमार-प्रेस, बुकडिपो

उत्तराधिकारी—नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो

लखनऊ.

सन् १९५६]

[मूल्य ॥)

हाथ में लगाम आते ही इन्द्रायुध सहम गय । उनके विशाल रूप को देखकर उसकी सारी चंचलता बिदा हो गई। सरलता से राजकुमार अश्वारूढ़ हो गये। राजा, मन्त्री और दर्शकों के आनन्द और विस्मय का पार न रहा। महाराज तारापीड़ भी पुत्र की घुड़सवारी की कला को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रेम से गद्‌गद हो राजकुमार को हृदय से लगा लिया।

तत्पश्चात् राजकुमार को साथ लेकर राजा नगर की ओर चले। वैशम्पायन भी एक घोड़े पर चढ़े राजकुमार के पीछे-पीछे चल दिये। नगर में प्रवेश करते ही नगर-वासी अपने-अपने घरों से निकल पड़े तथा राजकुमार और मन्त्री-पुत्र को देखकर मन-ही-मन प्रसन्न होने लगे। जहाँ होकर राजकुमार निकलते, दर्शक उन पर फूलों की वर्षा करते। उनके स्वागत में नगर-निवासियों ने नगर को बड़ी सुन्दरता से सजाया था। आगे अनेक प्रकार के बाजे बजते जाते थे। होते-होते राजकुमार राजमहल के निकट पहुँच गये।

राजमहल के द्वार पर पहुँचकर राजकुमार घोड़े से उतर पड़े। द्वार पर भी सहस्रों स्त्री-पुरुष उनके स्वागत के लिए खड़े थे। महारानीजी के साथ सहस्रों नारियाँ सुन्दर गाने गाती हुई राजकुमार के स्वागत के लिए आगे बढ़ीं। राज-कुमार के सुन्दर और सुदृढ़ शरीर को देखकर उनकी माता को बड़ा हर्ष हुआ। मन-ही-मन उन्होंने भगवान् की स्तुति की और प्रेम से उनका रोम-रोम पुलकायमान हो उठा। आगे बढ़कर रानी ने पुत्र का मस्तक चूमा और

जब दोनों कुमार समस्त विद्याओं में पारंगत हो चुके तो गुरुओं ने उन्हें पाठशाला से विदा करने की सोची। राजा के पास संदेश भेजा गया। राजा तथा मन्त्री अन्य छोटे-बड़े कर्मचारियों को साथ लेकर पाठशाला आये। उस दिन कुमारों की परीक्षा का दिन भी था। गुरुओं ने उनसे भाँति-भाँति की कलाओं का प्रदर्शन कराया।

इसके उपरान्त राजा ने एक अत्यन्त सुन्दर और चंचल

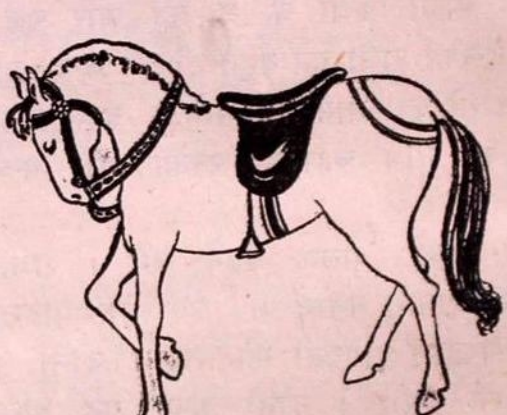

घोड़े को देते हुए कहा—पुत्रवर, मैंने बड़े यत्नों से इस घोड़े को प्राप्त किया है। इसकी टक्कर का घोड़ा सारी पृथ्वी पर मिलना कठिन है। इसका नाम भी इसके गुणों की भाँति विलक्षण है। पारस्य देश से आये हुए इस घोड़े का नाम इन्द्रायुध है। इस घोड़े पर सवारी करके तुम अपनी कला का परिचय दो।

अपने पिता के इन वचनों को सुनते ही राजकुमार आगे बढ़े और सेवक से घोड़े की लगाम ले ली। राजकुमार के

राजा की पुत्री है और इसका नाम पत्रलेखा है। बड़े महाराज ने इसके पिता के देश को जीता था और कुछ

ही समय पूर्व वे इस कन्या को बन्दी बनाकर लाये थे। महारानीजी की आज्ञानुसार आप इसे अपनी सेवा में रखिए।" माता की आज्ञानुसार राजकुमार ने पत्रलेखा को अपनी सेवा में रख लिया। उस दिन से वह सदैव उन्हीं के साथ रहने लगी। राजकुमार उसकी सेवाओं से बड़े प्रसन्न थे।

[३]

राजा तारापीड़ बहुत वृद्ध हो चुके थे। अब वे राज-काज के झंझट से छुटकारा पाना चाहते थे। उधर राजकुमार

उसे अपनी गोदी में बिठा लिया। राजकुमार को हृदय से लगाती हुई वे बोलीं—"पुत्र, आज मेरा जीवन धन्य है कि मैं तुम्हें सब प्रकार से योग्य देख रही हूँ। भगवान् ने बहुत दिनों के बाद मेरी यह अभिलाषा पूरी की है। अब मेरे मन में केवल एक ही लालसा है कि मैं शीघ्र-से-शीघ्र पुत्र-वधू का मुख देखूँ।" माता की इन बातों का राजकुमार संकोचवश कुछ उत्तर न दे सके।

राजकुमार का वह दिन इसी प्रकार घूमने-फिरने और मिलने-मिलाने में बीत गया। अगले दिन प्रातःकाल ही वे इन्द्रायुध पर चढ़कर और बहुत से नौकर-चाकरों तथा हाथियों और कुत्तों को लेकर वन में शिकार करने के लिए निकले। वन में पहुँचकर उन्होंने बहुत से शेर-चीते, सूअर और भालू आदि भयंकर जानवरों को बात-की-बात में मार गिराया। उनके बाण का कोई निशाना खाली नहीं जाता था। उनकी बाण-विद्या के इस कौशल को देखकर सभी लोग दंग रह गये। धीरे-धीरे गर्मी बढ़ने लगी। राजकुमार पसीने से बिलकुल भीग गये। थककर उनके घोड़े इन्द्रायुध के मुँह से झाग बहने लगा। इसलिए वे तुरन्त ही नगर को लौट पड़े। संध्या होते-होते राजकुमार और उनके साथ के सब लोग उज्जयिनी में आ गये। रात्रि में विश्राम कर सबने आखेट की थकावट दूर की।

अगले दिन प्रातःकाल राजकुमार महल में बैठे थे। उसी समय एक दासी ने आकर उन्हें प्रणाम किया और बोली—"कुमार, मेरे साथ में जो यह कन्या खड़ी है उसे महारानीजी ने आपके पास भेजा है। यह कुलूत देश के

अधिकार पाने पर अपने इन गुणों का नाश न कर बैठना। तुम्हारे ऊपर सारी प्रजा का भार है। इसलिए तुमको चाहिए कि तुम स्वयं ऐसे मार्ग पर चलो जिससे कि सारी प्रजा तुम्हारा अनुकरण करे। यदि राजा धर्मात्मा, और सत्यवादी होता है तो प्रजा में भी वैसे ही गुण पैदा होते हैं। अब तुम अपने कन्धों पर नीति और राज्यशासन का भार ले रहे हो। ऐसा न हो कि तुम्हारी निन्दा हो।" मन्त्री का उपदेश राजकुमार को बहुत प्रिय लगा। उन्होंने जीवन भर उनके उपदेशानुसार चलने का निश्चय कर लिया।

राज्याभिषेक का दिन आया। विविध प्रकार से उत्सव मनाया जाने लगा राजमहल के द्वार पर तरह-तरह के बाजे बज रहे थे। कहीं नृत्य हो रहा था और कहीं नगर-निवासी जय-जयकार कर रहे थे। पंडितवर्ग वेद-पाठ करने में लगा हुआ था। यज्ञ की सुगन्धि से सारा महल सुगन्धित था। पंडितों की आज्ञा पाकर राजकुमार सिंहासन पर बैठे। जय-जयकार की ध्वनि से आकाश गूँज उठा। महिलाएँ मंगलाचार गाकर राजकुमार के लिए जीवन, राज्य और सुख-वृद्धि की प्रार्थना करने लगीं। राजा तारापीड़ भी हर्ष से गद्‌गद थे। आज से राज्य-भार पुत्र को देकर वे निश्चिन्त हो रहे थे।

(४)

कुछ दिन बाद राजकुमार चन्द्रापीड़ ने एक बहुत बड़ी सेना इकट्ठी की। उसमें अगणित हाथी-घोड़े थे। पैदल सेना में अनेक सुसज्जित वीर योद्धा थे। हर प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों

चन्द्रापीड़ भी सब प्रकार से सुयोग्य हो गये थे। अतएव राजा ने उनका राज्याभिषेक करने का विचार किया। तुरन्त ही सारी प्रजा में यह समाचार फैल गया और प्रजा तरह-तरह के उत्सव मनाने लगी। महाराज तारापीड़ ने दूर-दूर देशों से राजतिलक की सामग्री इकट्ठी करने के लिए लोगों को भेजा।

इसी बीच में एक दिन राजमन्त्री शुकनास राजकुमार

के महल में आये और उनसे बोले—"देखो राजकुमार, तुम सब विद्याओं में निपुण हो और तुममें वे सभी गुण विद्यमान हैं, जो एक अच्छे राजकुमार में होने चाहिए। तुम अब युवा हो चुके हो, इसलिए महाराज ने तुम्हें राज्य-भार सौंपने का विचार कर लिया है। थोड़े ही दिन में तुम राज्य के स्वामी बन जाओगे। परन्तु प्रियवर !

सोचने लगे—आखिर, इन निर्दोष प्राणियों के पीछे पड़कर मैंने क्या लाभ उठाया ? मुझे इनके पकड़ने की कोई आवश्यकता भी नहीं थी, फिर भी मैंने व्यर्थ में इन्हें तथा अपने घोड़े को कष्ट दिया। इसी विचार में मग्न होकर वे पीछे लौटने लगे। प्यास से उनका गला सूख रहा था। घोड़ा भी थककर हाँफ रहा था। मार्ग का कोई पता नहीं था। इस विपत्ति को देखकर उनका मन बहुत चिन्तित हो रहा था। इसलिए वे थककर एक पेड़ की छाया में बैठ गये और घोड़े को भी उसी पेड़ से बाँध दिया।

राजकुमार ने चारों ओर दृष्टि डाली, परन्तु पानी कहीं दिखाई न दिया। थोड़ी दूर पर उन्हें हाथियों के पैरों के कुछ चिह्न दिखाई दिये। इससे उन्होंने अनुमान किया कि पास में कहीं कोई जलाशय अवश्य है और इसी मार्ग से हाथी वहाँ पानी पीने जाते हैं। हाथियों के पैरों के चिह्नों के सहारे राजकुमार पानी की खोज में चले। मार्ग के दोनों ओर बड़े घने जंगल थे। उनकी शाखाएँ मार्ग को रोके हुई थीं। कहीं-कहीं बड़ी-बड़ी शिलाएँ पड़ी थीं। बड़ा ही दुर्गम मार्ग था। परन्तु प्यास की व्याकुलता के कारण वे आगे बढ़े ही जाते थे। चलते-चलते उन्हें एक स्वच्छ जल से भरा हुआ सरोवर दृष्टि पड़ा। उसे देखते ही उनका सारा क्लेश दूर हो गया और सरोवर के निकट पहुँचते ही वे घोड़े से उतर पड़े। राजकुमार तथा घोड़े ने इच्छापूर्वक जल पिया। इसके बाद वे सरोवर के निकट ही एक पेड़ के नीचे लेट रहे।

से यह सेना सुसज्जित थी। ऐसी विशाल सेना का आयोजन करके राजकुमार चन्द्रापीड़ मन में छोटे-मोटे राज्यों को जीतने की लालसा से दिग्विजय के लिए चले।

राजकुमार एक मणियों से सजे हुए हाथी पर सवार थे। पास ही पत्रलेखा भी बैठी थी। वैशम्पायन एक दूसरे हाथी पर चढ़े युवराज के साथ चल रहे थे। छोटे-मोटे राजे तो उनकी विशाल सेना को देखकर ही डर जाते और बिना लड़े ही उनकी शरण में आ जाते थे। यदि कोई राजा उनसे लड़ता भी तो उसे बुरी तरह से मुँह की खानी पड़ती थी! इस प्रकार अपनी सेना की सहायता से राजकुमार ने चारों दिशाओं में अपनी विजय-पताका फहरा दी। फिर वे कैलास पर्वत के निकट किरातों की स्वर्णपुरी नाम की नगरी में पहुँचे। उसे भी उन्होंने शीघ्र ही विजय कर लिया। जब सब देश के राजाओं ने उनका आधिपत्य स्वीकार कर लिया तो उन्होंने अपनी सेना को विश्राम देने के लिए वहीं डेरे डाल दिये। आप भी पत्रलेखा और वैशम्पायन के साथ वहीं ठहर गये। एक दिन वे जंगल में आखेट के लिए निकले। अचानक उनकी दृष्टि एक किन्नर और किन्नरी पर पड़ी। उन्हें देखकर राजकुमार का जी ललचा आया और वे उन्हें जीवित ही पकड़ने का विचार करने लगे। तुरन्त ही उन्होंने अपना घोड़ा दौड़ा दिया। राजकुमार के बहुत यत्न करने पर भी वे दोनों जीव हाथ न आये और कुछ देर बाद किसी झाड़ी में विलीन हो गये।

चन्द्रापीड़ अपनी इस असफलता पर बड़े दुखी हुए

और उसी मन्दिर में अट्ठारह वर्ष की एक कन्या महादेवजी की मूर्ति के सम्मुख-वीणा बजाकर उनकी स्तुति कर रही थी। उसके कन्धे पर जटा लटक रही थी और शरीर पर भस्म रमी हुई थी।

चन्द्रापीड़ घोड़े से उतर पड़े और मन्दिर के द्वार की ओर चल दिये। मन्दिर में प्रवेश करते ही उन्होंने शिवजी की मूर्ति को प्रणाम किया और फिर उस देवी की ओर देखने लगे। राजकुमार मन ही मन कहने लगे कि आज मैं कहाँ से कहाँ आ गया और आज क्या-क्या देख रहा हूँ? यह कन्या तो मनुष्य की पुत्री जान नहीं पड़ती। मनुष्यों में इतनी सुन्दरता कहाँ है? यह तो अवश्य ही कोई देव-कन्या है। इन्हीं बातों का विचार करते हुए वे मन्दिर के एक कोने में बैठ गये। भजन समाप्त हुआ, वीणा बंद हुई। कन्या ने शिवजी की मूर्ति की प्रदक्षिणा की और भक्ति से प्रणाम किया। इसके बाद उसने चन्द्रापीड़ की ओर देखा और उन्हें भी नमस्कार किया। फिर विनीत भाव से बोली—महानुभाव, आप आज मेरे यहाँ ठहरें। जान पड़ता है कि आप बहुत चिन्तित हैं और मार्ग भूलकर इधर आ निकले हैं। उसके इन बचनों को सुनकर चन्द्रापीड़ का विस्मय और बढ़ गया।

चन्द्रापीड़ उसके साथ-साथ चल दिये। थोड़ी दूर जाकर सुन्दर वृक्षों से घिरी हुई एक गुफा दिखाई दी उस गुफा के दोनों ओर दो सुन्दर झरने थे। गुफा की स्वच्छता और सुन्दरता ने राजकुमार के मन पर जादू जैसा प्रभाव डाला। गुफा में जाकर उस देवी ने राजकुमार से उनका परिचय

थके हुए होने के कारण राजकुमार को निद्रा आ गई

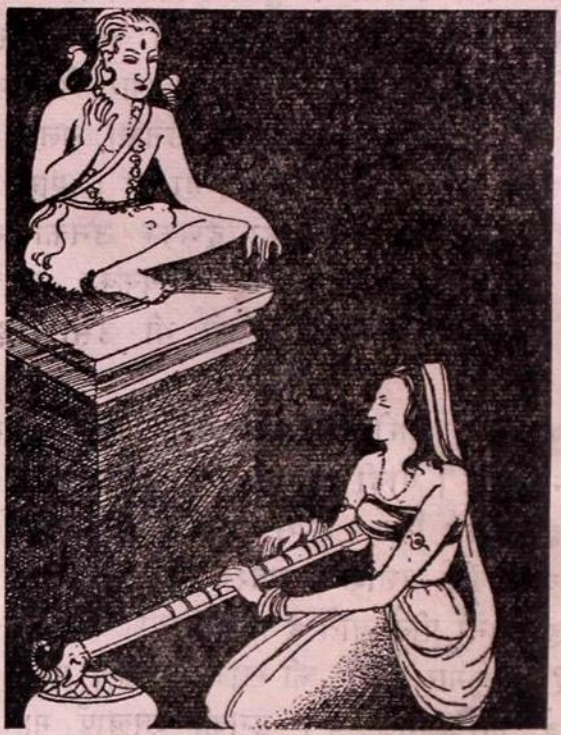

इसी बीच में उनके कानों में वीणा की ध्वनि और मधुर राग सुनाई पड़ा। उस भयानक और निर्जन वन में इस राग को सुनकर उनके विस्मय की सीमा न रही। वे चौकन्ने होकर चारों ओर देखने लगे, परन्तु कुछ दिखाई न दिया। फिर वे घोड़े पर चढ़कर उसी ओर चल पड़े, जिस ओर से वह मधुर राग सुनाई पड़ रहा था! थोड़ी दूर चलकर उन्हें सुन्दर कैलास पर्वत का एक भाग दिखाई पड़ा। पर्वत के ऊपर शिवजी का एक विशाल मन्दिर था

बाल-कादम्बरी

अवन्तिदेश में उज्जयिनी नाम की एक सुन्दर नगरी थी।

वहाँ शिवजी का एक अत्यन्त ही सुन्दर और विशाल मन्दिर था। नगरी के निकट ही एक परम स्वच्छ और पवित्र नदी सिप्रा बहती थी। सिप्रा उज्जयिनी की शोभा को और भी बढ़ा रही थी।

उज्जयिनी के राजा तारापीड़ बड़े ही प्रतापी तथा न्यायी थे। आसपास के समस्त राज्यों में उनकी वीरता की धाक बैठी हुई थी। उनकी प्रजा भी अत्यन्त सुखी थी। राजा केवल राजा ही नहीं थे, वरन् एक विद्वान् पंडित भी थे। शुकनास नाम का उनका मंत्री भी बड़ा विद्वान्, धीर-वीर और गम्भीर पुरुष था। मन्त्री की पत्नी मनोरमा भी उन्हीं की भाँति गुणवती थी।

महाराज तारापीड़ अपने मन्त्री का पूर्ण विश्वास करते थे। उन्होंने राज्य का सारा भार मन्त्री के ऊपर छोड़ रक्खा था। मन्त्री भी सदैव अपनी बुद्धि से काम लेते थे। उनकी बुद्धिमानी से समस्त राज्य में कहीं भी शत्रुओं का भय न था। इसलिए राजा सब चिन्ताओं को त्याग कर आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे।

अत्यन्त सुन्दर तथा सुशीला रानी और सब प्रकार से

में ही तपस्विनी का वेष धारण किया है ? किस घटना ने आपके जीवन को ऐसा दुखी और रूखा बना डाला ?"

कन्या इन प्रश्नों को सुनकर व्याकुल हो उठी। उसने ठण्डी साँस ली और फिर बड़े जोर से रोने लगी। राजकुमार उसे रोते देखकर दुखी हुए। वे उसे धैर्य दिलाने लगे। थोड़ी देर में अपने आँसुओं को पोंछती हुई वह बाला बोली कि राजन्, आप मेरे वृत्तान्त को सुनकर क्या करेंगे ? यदि सुनने की बहुत इच्छा ही है तो सुनिये।

मेरे पिता का नाम हंस है। वे गन्धर्व जाति के नेता हैं। मेरी माता का नाम गौरी है। यह शिवजी का मंदिर और आच्छोद नामक सरोवर मेरे पितामह के बनवाये हुए हैं। मैं गन्धर्व-कन्या हूँ और अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान हूँ। इसलिए बालकपन से ही उनका मुझ पर बड़ा स्नेह रहा है।

कुछ समय पूर्व वसन्तऋतु में अपनी माता के साथ मैं इस तालाब में स्नान करने आई थी। स्नान करते-करते मुझे एक अद्भुत सुगन्ध आई। ऐसी सुगन्ध अपने जीवन में मैंने कभी न सूँघी थी। उस सुगन्ध से मत्त होकर मैं सरोवर से निकलकर उस ओर चल दी, जिधर से सुगन्ध आ रही थी। कुछ दूर जाकर मैंने दो सुन्दर ऋषिकुमारों को आते देखा। बड़े कुमार के कान में एक कुसुम-मंजरी थी। यह सुगंध उसी से आ रही थी। इसके बाद मैंने उस मुनिकुमार के मुख की ओर देखा तो मन में सोचने लगी कि क्या

पूछा। राजकुमार चन्द्रापीड़ ने आदि से अन्त तक अपनी सारी उस तपस्विनी को कह सुनाई।

राजकुमार को गुफा में ही छोड़कर वह कन्या पेड़ों के नीचे कमण्डल लेकर खड़ी हो गई। पेड़ों से स्वयं ही पके और मीठे-मीठे फल उसके कमण्डल में गिरने लगे। इस विचित्र बात को देखकर राजकुमार पर उस देवी के तप का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने फलों का कमण्डल राजकुमार के सामने लाकर रख दिया। राजकुमार ने भरपेट फल खाये और फिर जल पीकर वे पूर्ण तृप्त हो गये।

फल खाने के बाद वे पास ही में एक शिला पर विश्राम करने लगे। फिर उन्होंने उस कन्या से उसका परिचय पूछना चाहा और बोले—"बोले, मैं आपके सत्कार के लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। मैंने आपको अपना सारा परिचय बता दिया है। यदि आपको कुछ संकोच न हो तो मुझे अपने तपस्विनी बनने का कारण समझाइये। आपकी बड़ी कृपा होगी। आप किसी देवता की पुत्री हैं या मनुष्य की? किस कारण से आपने अपने यौवनकाल

और उनके कान की उस अद्भुत कली के विषय में भी जानना चाहा।

मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए वह बोले—"देवी, इन

मुनिकुमार का नाम पुण्डरीक है। सागर-मंथन के समय पारिजात नाम का एक वृक्ष निकला था। इनके कान में जो कुसुम-मंजरी है, उसी वृक्ष की है। आज चतुर्दशी है। मैं और ये दोनों ही महादेवजी की पूजा के लिए यहाँ पर आये हैं। मार्ग में आते हुए हमें नन्दनवन पड़ा। उसी वन के माली ने यह पुष्प इन्हें अर्पण किया है।"

छोटे मुनिकुमार मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दे ही रहे थे कि बड़े ऋषिकुमार हँसकर बोले कि हे बाले, तुम यह प्रश्न क्यों पूछ रही हो? यदि तुम इस फूल को लेना चाहती हो तो यह लो। यह कहकर उन्होंने वह फूल अपने कान

इतने सुन्दर प्राणी भी इस पृथ्वी पर हो सकते हैं। उनके सुन्दर रूप को देखकर मैं व्याकुल सी हो गई। न जाने क्यों मेरे हृदय में उनकी ओर प्रेम उत्पन्न होने लगा। मैं उनसे कुछ कहना भी चाहती थी, परन्तु मुझे पता था कि मुनि लोग क्रोधी होते हैं। तनिक सी बात पर शाप दे डालते हैं। इसलिए मैं चुप रही। फिर भी मैंने साहस करके उन्हें प्रणाम किया।

मुनिकुमार ने बड़े प्रेम से मेरे प्रणाम का उत्तर दिया। उनके उत्तर देने के ढंग से ही मैंने जान लिया कि वे मुझ से कुपित नहीं हैं, वरन् उनके नेत्रों से मेरे लिए प्रेम प्रकट होता था। पास ही में खड़े दूसरे मुनिकुमार से—जो इनसे रूप-रंग में बहुत मिलते थे—मैंने उनका परिचय पूछा

और हर स्थान पर मुझे पुण्डरीक की मूर्ति ही फिरती दिखाई पड़ने लगी।

कुछ दिन बाद मेरी दासी तरलिका ने मुझसे आकर कहा—"हे राजपुत्री, उस दिन सरोवर के निकट हमें जो दो ऋषिकुमार मिले थे, उनमें एक—जिन्होंने तुम्हारे कान में वह फूल पहनाया था—तुम्हारा परिचय पूछते थे। मैंने उन्हें आपका सारा परिचय बता दिया है। उन्होंने मुझे यह पत्र भी लिखकर दिया है।

मैंने वह पत्र अपनी दासी के हाथ से ले लिया। उसे पढ़कर मेरा मन और भी व्याकुल हो उठा और तरलिका से पूछने लगी कि बतला, तूने उन्हें कहाँ देखा था? वे किस वेष में थे? कहाँ जा रहे थे? उनके साथ और कौन था? इस प्रकार मेरा सारा दिन उन्हीं की बातें कहते-कहते बीत गया।

एक दिन मैं मुनिकुमार पुण्डरीक की चिन्ता में बैठी थी कि मैंने तरलिका के साथ पुण्डरीक के उन्हीं पुराने मित्र को आते देखा। वे मेरे पास आकर बोले—"देवी, मैं कुछ कहना चाहता हूँ, परन्तु संकोच के कारण कुछ कहते भी नहीं बनता। तपस्वी पुण्डरीक सदा तुम्हारे ध्यान में ही मग्न रहते हैं। उनकी बड़ी शोचनीय दशा है। इस बीच में उनका विशाल शरीर सूखकर काँटा हो चला है। वे पागलों की भाँति हर समय तुम्हारा ही नाम जपते हैं। मैंने उन्हें तरह-तरह के उपदेश भी दिये, परन्तु सबके सब निष्फल हुए। वे मेरे उपदेशों को सुनकर केवल रोने लगते हैं और इसके अतिरिक्त उन पर कोई प्रभाव नहीं

से निकालकर मेरे कान में लगा दिया। इतनी देर में दासी ने आकर मुझसे कहा कि माताजी बुला रही हैं। मैं मुनिकुमार को छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहती थी, परन्तु माता का सन्देश आने पर मुझे जाना ही पड़ा।

उधर मेरे जाते ही पुण्डरीक का मन भी बहुत व्याकुल हुआ, क्योंकि उन्हें भी मुझसे मोह हो चला था। उनकी यह दशा देखकर छोटे मुनिकुमार बोले—मित्र पुण्डरीक, तुम्हें यह क्या हो गया? तुम्हारा हृदय तो बड़ा पवित्र और स्थिर था। क्या तुम भूल गये कि तुम मुनिकुमार हो और तुम्हारे लिए यह सब कुछ शोभा नहीं देता। तुमने अपनी फूल और माला आदि सब उस दुष्ट स्त्री को दे डाले। अब भी सावधान हो जाओ।

अपने मित्र की बातें सुनकर वे पागल की भाँति मेरी ओर दौड़े और बोले—"कहाँ जाती हो? मेरी माला मुझे दे जाओ।" मैं उन्हें अपनी ओर आता देखकर तुरन्त रुक गई और भूल से उनकी माला के बदले मैंने उन्हें अपना हार दे दिया। वे भी प्रेम में ऐसे भूले हुए थे कि उसी हार को उन्होंने माला समझकर ले लिया। मैं इसके बाद अपनी माता के साथ महल में पहुँच गई। परन्तु हर समय

THIS EBOOK IS DOWNLOADED FROM
SHAAHISHAYARI.COM

LARGEST COLLECTION OF URDU
SHERS, GHAZALS, NAZMS AND EBOOKS.

किसी प्रकार बातों-बातों में हमारा सारा मार्ग कट गया और हम दोनों उसी सरोवर के निकट जा पहुँचीं, जहाँ हमने ऋषि-पुत्र पुण्डरीक को छोड़ा था। सरोवर के तीर पर बैठकर मैं अपने पैर धोने लगी। इतने में मुझे किसी के रोने का शब्द सुनाई दिया। जिधर से रोने का शब्द आता था, मैं और तरलिका उसी ओर चल दीं।

थोड़ी दूर जाकर क्या देखती हूँ कि मुनिकुमार कपिंजल फूट-फूटकर रो रहे हैं और जिन पुण्डरीक के दर्शनों

के लिए मैं गुप्त रूप से घर से चल पड़ी थी, वे पृथ्वी पर चेतनाहीन पड़े हुए हैं। यह दारुण दृश्य देखकर मुझे भी अपने तन-मन की कुछ सुध-बुध न रही। मुझे देखते ही कपिञ्जल और भी अधिक ढाढ़ें मार-मारकर रोने लगे। पुण्डरीक के मृतक शरीर से मैं लिपटकर और घोर विलाप करने लगी। मुझे जान पड़ा, मानो मैं पाताल में धँसी जा रही हूँ। पुण्डरीक के मृतक शरीर को मैं बार-बार देखती

पड़ता उनसे छिपकर मैं आपके पास आया हूँ। अब आप जो कुछ उचित समझें करें।"

मुनिकुमार उत्तर पाने की लालसा से मेरे मुँह की ओर देखने लगे। मुझे भी पुण्डरीक के हृदय में अपने प्रति अनुराग का समाचार जानकर बड़ा हर्ष हुआ। इतनी देर में ही मेरी माता वहाँ आ गईं। पुण्डरीक के मित्र कपिञ्जल मेरी बातें सुने बिना ही मेरे पास से चल दिये। मुझे भी उनके जाने का बड़ा दुःख हुआ, परन्तु माता के कारण संकोच में पड़ गई और उन्हें जाने से रोक न सकी। थोड़ी देर में माताजी वहाँ से चली गईं। अब मेरे पास केवल मेरी दासी तरलिका ही रह गई। मैं तरलिका से बोली—तरलिके, क्या तुम मेरे दुःख को नहीं देखती हो? मुझे इस संकट में केवल तुम्हारा ही सहारा है। इसलिए तुम मुझे पुण्डरीक के पास ले चलो। उनके पवित्र दर्शन किये बिना मेरा जीवन कठिन है।

फिर तरलिका को साथ लेकर मैं मुनिकुमार पुण्डरीक के दर्शनों को चल दी। मार्ग में मेरा दाहिना नेत्र फड़कने लगा। मुझे अपशकुन दिखाई देने लगे। इससे मेरा हृदय और भी घबरा उठा।

किये पुण्डरीक के मृतक शरीर के पास उतरा। अपने दोनों हाथों से यह उनके मृत शरीर को पकड़कर मुझसे बोला—"हे महाश्वेता, प्राण त्याग न करना। तुम्हारी और पुण्डरीक की फिर भेंट होगी।" यह कहकर वह देवता मुनिकुमार के मृतक शरीर को लेकर आकाश में उड़ गया। मैं वहीं पर चकित सी खड़ी रही। कपिञ्जल भी

उस देवता के पीछे यह कहते हुए उड़ गये—"अरे दुष्ट, तू मेरे भाई को कहाँ लिये जाता है?" मैंने ऊपर की ओर देखा। शीघ्र ही वे तारों में मिल गये। उनके उड़ जाने का मुझे प्राणप्रिय पुण्डरीक की मृत्यु से भी अधिक दुःख हुआ।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में

हिन्दी-साहित्य की एक कमी मुझे बहुत दिनों से खटक रही थी। एक तो हिन्दी का बाल-साहित्य यों ही अधूरा है; फिर जो कुछ है भी उसमें उपयुक्त पुस्तकों का बड़ा अभाव है। अच्छे-अच्छे कवियों, उपन्यासकारों तथा लेखकों की कृतियों का बच्चों के लिए सरल तथा सुबोध भाषा में पुनःकथन (Retlling) बड़ा आवश्यक है। हमारे यहाँ इस ओर किसी ने कदम नहीं उठाया।

अच्छी-अच्छी पुस्तकों को यदि बालक-बालिकाओं के लिए फिर से लिखा जाय तो यह बाल-साहित्य के सृजन में बड़ा भारी ठोस कार्य होगा। इससे एक बड़ा लाभ तो यह होगा कि छोटी ही अवस्था में हमारे बच्चों का अपने साहित्य के रत्नों से परिचय हो जायगा। इसी विचार से हमने इस पुस्तक में पंडित बाणभट्ट के संस्कृत-उपन्यास 'कादम्बरी' को छात्रों के लिए फिर से लिखा है। हमारे प्राचीन साहित्य में कादम्बरी का विशेष स्थान है।

स्वयं अध्यापक होने के कारण मैंने यह सिरीज विशेषकर स्कूलों में पढ़नेवाले बालक तथा बालिकाओं के लिए शिक्षा-विभाग की प्रेरणा से तैयार किया है। अतएव प्रत्येक पुस्तक के अंत में कुछ प्रश्न तथा करने के लिए काम दिया है। इससे छात्रों और अध्यापकों दोनों ही को इन पुस्तकों के पठन-पाठन में सहायता मिलेगी।

और फिर घोर रुदन करने लगती। कभी कपिञ्जल के चरणों को पकड़ लेती और कभी तरलिका के गले से लिपट जाती। वे दोनों भी मेरी दशा देखकर शोक से पागल हो रहे थे।

इस प्रकार अपना दुःखद वृत्तान्त कहते-कहते महाश्वेता के सामने वे सब पुराने दृश्य एक-एक करके आने लगे और वह मूर्च्छित होकर शिला पर गिर पड़ी। उसको मूर्च्छित देखकर चन्द्रापीड़ ने उसके मस्तक पर ठंडे जल के छींटे दिये और उसके मुख से आँसुओं की धारा पोछी। थोड़ी देर में उसकी मूर्च्छा समाप्त हुई और वह फिर चन्द्रापीड़ के मुख की ओर देखने लगा। चन्द्रापीड़ ने उससे कहा—"देवी, मैंने बड़ा भारी पाप किया है। तुम्हारा वृत्तान्त पूछकर मैंने तुम्हारे सोते हुए दुःख को जगा दिया। इसके सुननेमात्र से ही मेरा हृदय काँप उठा और मैं तुम्हारे दुःख के कारण महादुखी हूँ।"

महाश्वेता बोली—महाराज, आप मेरे दुःख से दुःखी न हों। केवल मेरी इस दुःखद कथा को सुनकर, मुझे कृतार्थ कीजिए। इस दुःख को सुन सुनकर मेरे मन का भार हलका होता है। इसलिए आप शेष वृत्तान्त सुनने की अवश्य ही कृपा करें।

यह कहकर महाश्वेता ने फिर अपना वृत्तान्त आरम्भ किया और बोली कि राजन्, इस विलाप के बाद मैंने पुण्डरीक के साथ ही अपनी जीवन-लीला समाप्त करने का विचार किया और तरलिका को लकड़ी लाकर चिता बनाने की आज्ञा दी। इतने में स्वर्ग से एक देवता सुन्दर वस्त्र धारण

वाली मैं तो हूँही। मेरी एक सखी ने मेरे कारण एक और भी कठिन व्रत ले रक्खा है। मेरी उस सखी का नाम कादम्बरी है। वह भी गन्धर्व-कन्या है। मैं और वह एक साथ खेलीं, पढ़ीं और बड़ी हुई हैं। हम दोनों के दो शरीर और एक मन था। मैं अपने दुःख से बहुत दुखी थी। मेरी सखी कादम्बरी ने भी मेरे दुःख से दुखी होकर यह प्रण किया है कि जब तक मेरी सखी महाश्वेता अपने प्रिय के वियोग से दुखी रहेगी, मैं भी अपना विवाह नहीं करूँगी। यदि ब्याह कर देंगे तो मैं अन्न त्याग दूँगी या आग में जलकर या फाँसी लगाकर मर जाऊँगी। उसके इस प्रण से मुझे और भी अधिक दुःख हो रहा है। कादम्बरी को जीवन में सारे सुख प्राप्त हैं। उसकी माता मदिरा और पिता गन्धर्वराज चित्ररथ दोनों ही उस पर बड़ा प्रेम करते हैं। उन्हें भी उसकी इस प्रतिज्ञा से बड़ा दुःख हुआ है। उन्होंने उसे बहुत समझाया, परन्तु वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ है। मैंने भी उसे समझाया, परन्तु वह तो कहती है—कादम्बरी क्या नहीं जानती कि मैं और तुम बचपन से ही साथ रहीं, साथ खेलीं और साथ ही खातीं, पहनतीं और गाती-बजाती रहीं। अब यह कैसे हो सकता है कि मैं जीवन के सुख भोगूँ और तुम इस प्रकार दुःख की आग में जला करो। कादम्बरी आपके आने से कुछ ही क्षण पहले यहीं थी। मैंने आज उसे फिर समझाया है और इस कठिन प्रण को तोड़ने का उपदेश दिया है। परन्तु मुझे आशा नहीं कि वह मेरे इस उपदेश को माने भी।

चन्द्रापीड़ और महाश्वेता को बातें करते-करते संध्या

इतनी कथा कह चुकने पर महाश्वेता फिर राजकुमार चन्द्रापीड़ से बोली—"राजन्, मैंने उसीदिन से सारे जीवन के सुखों पर लात मार दी है। माता-पिता का स्नेह भी त्याग दिया है। भाई-बन्धु और सखी-सहेलियों के प्यार से भी मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। अब उसी देवता की वाणी के सत्यसिद्ध होने की आशा है और उसी आशा में मैं यह तपस्विनी का रूप धारण किये हुये हूँ। देखूँ, भगवान् इस आशा को कब पूरी करते हैं। मेरे माता-पिता ने भी मुझे बहुत समझाया और घर वापस ले जाने लिए हठ किया, परन्तु अब मैं इसी व्रत पर डटी रहूँगी और इसी आशा में अपना जीवन बिताऊँगी।

इस वृत्तान्त को समाप्त करके महाश्वेता फिर पत्तों में मुँह ढककर विलाप करने लगी। उसकी यह दशा देखकर राजकुमार चन्द्रापीड़ उसे समझाने लगे—"महाश्वेता, तुम्हारा प्रेम सच्चा है। तुम पुण्डरीक के लिए अपने जीवन के सारे सुखों पर लात मारे हुए हो। तुमने जिस आत्मा के लिए अपना जीवन समर्पण किया है, वह वास्तव में महापुरुष थे। तुम धन्य हो कि उनके कारण सर्वस्व त्याग चुकी हो। भगवान् की भक्ति और प्रेमी का स्मरण ही तुम्हारे जीवन के मुख्य कार्य हैं। सच्चे हृदय से की हुई प्रार्थना भगवान् अवश्य सुनते हैं। इसलिये मुझे विश्वास है कि तुम्हारा मनोरथ शीघ्र ही सिद्ध होगा। तुम्हें एक देवता ने आशा दी है, उसका वाक्य झूठ नहीं हो सकता।"

"महाराज, मुनिकुमार पुण्डरीक के शोक में घुलने-

आकर मुझे पवित्र किया है। आपके आने से मेरा भी दुःख दूर हुआ है! इसलिए यदि आपको कष्ट न हो तो आप भी मेरे साथ सखी कादम्बरी के पास चलें। मैं कल ही यहाँ लौट आऊँगी। महाश्वेता की बात को सुनकर चन्द्रापीड़ बोले—देवी, तुमने अकारण ही मेरी इतनी सेवा की है। इसलिए जिधर आपकी आज्ञा हो मैं उधर ही जाने के लिए तैयार हूँ।

फिर वे दोनों गंधर्वनगर की ओर चल दिये; जहाँ कादम्बरी रहती थी। नगर में पहुँचकर चन्द्रापीड़ बड़े विस्मित हुए, क्योंकि अपने जीवन में ऐसा सुन्दर नगर उन्होंने पहले

कभी न देखा था। एक दासी को साथ लेकर महाश्वेता और चन्द्रापीड़ कादम्बरी के महल में पहुँचे।

हो गई। संध्या होते ही महाश्वेता महादेवजी के मन्दिर में पूजा के लिए चली गई और चन्द्रापीड़ वहीं घूमने लगे। रात्रि में एक शिला पर चन्द्रापीड़ सो गये, महाश्वेता भी एक कोने में भजन करती-करती सो गई। सारी रात स्वप्न में उसे पुण्डरीक की मूर्ति दिखाई दी।

(५)

अगले दिन प्रातःकाल उठकर चन्द्रापीड़ ने देखा कि एक युवक हाथ में तलवार लिये हुए उधर आ रहा है। उसका नाम केयूरक था। उसके साथ में महाश्वेता की दासी तरलिका थी। महाश्वेता ने तरलिका से पूछा—तरलिके, कहो कादम्बरी ने मेरी बात पर क्या विचार किया है? क्या वह मेरी बात मानेगी या नहीं?

महाश्वेता की बात सुनकर तरलिका तो चुप रही, परन्तु केयूरक बोला—देवी, वे आपका उपदेश मानने को तत्पर नहीं हैं। वे तो इसी वन में, आपके साथ रहने का हठ कर रही हैं। माता, पिता, गुरु और सखी-सहेलियों के समझाने का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उनकी इस दृढ़ता को देखकर सभी अत्यन्त दुखी हैं। इसलिए आप स्वयं ही उन्हें जाकर फिर से समझाइये। सम्भव है, इस बार कुछ प्रभाव हो।

केयूरक की बात सुनकर महाश्वेता ने कादम्बरी के पास जाने का विचार किया और केयूरक से बोली—अच्छा, केयूरक तुम चलो। थोड़ी देर में मैं कादम्बरी के पास आती हूँ। केयूरक वहाँ से चला गया। महाश्वेता चन्द्रापीड़ से बोली—श्रीमान्, आपने मेरे आश्रम पर

समय महाश्वेता ने कादम्बरी से महाराज चन्द्रापीड़ के ठहरने के लिए प्रबन्ध कराने के लिए कहा। कादम्बरी ने तुरन्त ही एक मणियों से बने हुए मन्दिर में उन्हें ठहराने के लिए प्रबन्ध करा दिया।

उस रात को महाराज चन्द्रापीड़ उसी भवन में ठहरे। भवन की शोभा देखकर उन्हें अपने राजमहलों का सौंदर्य फीका जान पड़ता था। भवनों की शोभा देखकर वे बड़े चकित हो रहे थे। सबेरा होते ही कादम्बरी की दासी मदलेखा उनके पास पहुँची। मदलेखा कादम्बरी के पास से एक सुन्दर हार लेकर आई थी। उस हार को चन्द्रापीड़ को देती हुई बोली—महाराज, यह सुन्दर हार समुद्र देवता ने कादम्बरी के पिता गन्धर्वराज को दिया था। अब इसे कादम्बरी ने आपके पास भेजा है। आप इसे प्रेम की भेंट समझकर स्वीकार कीजिये। चन्द्रापीड़ ने उस हार को प्रेम से ग्रहण किया।

दो-तीन दिन तक राजकुमार उसी महल में ठहरे रहे। वहाँ उन्हें सब प्रकार के आनन्द थे। कादम्बरी और महाश्वेता के सत्कार के कारण उनका हृदय इस सुन्दर नगरी को छोड़ने को न चाहता था। परन्तु अपनी सेना से दूर हुए उन्हें कई दिन हो चुके थे। दोनों ओर से किसी को एक दूसरे का समाचार नहीं मिला था। इसलिए उन्हें बड़ी चिन्ता थी। महाश्वेता से उन्होंने अपनी सेना के पास लौट जाने की इच्छा प्रकट की। कादम्बरी को उनके जाने का समाचार जानकर बड़ा दुख हुआ। परन्तु उनके लिए जाना आवश्यक था। इसलिए

कादम्बरी एक रत्नजटित शय्या पर लेटी हुई केयूरक से महाश्वेता का वृत्तान्त पूछ रही थी। बहुत सी स्त्रियाँ हाथ में बाजे लिये उसके चारों ओर बैठी थीं। महाश्वेता को देखते ही वह शय्या से उठ बैठी और उसका आलिङ्गन किया। फिर बोली—देवी, आपके साथ ये महापुरुष कौन हैं? थोड़ी देर तक कादम्बरी और चन्द्रापीड़ एक दूसरे की ओर देखते रहे। कादम्बरी चन्द्रापीड़ के रूप को देखकर मोहित हो गई और उधर उनके हृदय में भी उसके अद्वितीय रूप को देखकर बड़ा विस्मय हुआ।

महाश्वेता ने चन्द्रापीड़ का परिचय कराते हुए कहा—कादम्बरी, ये भरतखण्ड के महाराज तारापीड़ के पुत्र हैं। इनका नाम चन्द्रापीड़ है। ये आखेट के लिए आये थे। मार्ग भूलकर भटकते-भटकते सरोवर की ओर आ निकले और वहाँ मुझसे भेंट हो गई। इनके रूप और गुणों ने मन्त्रमुग्ध-सा कर लिया है। ये बड़े प्रेमी पुरुष हैं। तुम भी इनसे बातें करके अपने आपको धन्य समझोगी। इसके बाद कादम्बरी और महाश्वेता एक सिंहासन पर बैठ गईं। राजकुमार सामने ही एक दूसरे सिंहासन पर विराजमान हुए।

प्रथम मिलन में ही कादम्बरी और चन्द्रापीड़ के हृदयों में प्रेम का संचार हो गया। वे मन ही मन एक दूसरे के अद्भुत रूप की प्रशंसा करने लगे। उधर महाश्वेता को भी उनके प्रेम का पता लगा और वह भी मन ही मन हर्षित होने लगी। थोड़ी देर में एक चेरी ने कहा—देवी महाश्वेता, आपको राजा तथा रानी बुलाते हैं। जाते

पृथ्वी पर घास-फूस का आसन लगाये लेटी हुई थी और दो दिन में ही उसके मुख की कान्ति मलिन हो गई थी और चेहरा सूख गया था। महाश्वेता भी उसी के पास बैठी उसे धैर्य दिलाने की चेष्टा कर रही थी। इतने में ही महाराज चन्द्रापीड़ केयूरक के साथ वहाँ जा पहुँचे।

उन्हें देखकर ही कादम्बरी का ललाट खिल उठा और तुरन्त ही उठकर खड़ी हो गई। महाश्वेता को भी उनके

बहुत से नौकर-चाकरों के साथ उसने राजकुमार को अपनी सेना के पास जाने के लिए बिदा किया।

राजकुमार को सेना में आया देखकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। अपने मित्र वैशम्पायन और पत्रलेखा से उन्होंने अपनी यात्रा की सारी कथा कह सुनाई। महाश्वेता की दुखद कथा, उसका अतिथि-सत्कार, कादम्बरी के रूपगुण की शोभा तथा गन्धर्वनगर की विलक्षण शोभा का वर्णन सुनकर वैशम्पायन को बड़ा हर्ष हुआ।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही कादम्बरी का दास केयूरक महाराज चन्द्रापीड़ के निकट आया। महाराज को प्रणाम कर वह बोला—महाराज, कादम्बरी ने आपके लिए सुगन्धित लेप, हार और पान की यह भेंट भेजी हैं। महाश्वेता और कादम्बरी दोनों ही आपके चले आने के कारण बहुत दुखी हैं। कादम्बरी तो आपका स्मरण कर-करके रोती है। इसलिए आप एक बार फिर जाकर अवश्य ही दर्शन दीजिये।

कादम्बरी की यह दशा सुनकर चन्द्रापीड़ ने वैशम्पायन को बुलाकर कहा—मित्र, मैं फिर गन्धर्वनगर को जाता हूँ। कादम्बरी मुझे याद करके रोती है। इसलिए अब मेरा जाना बहुत आवश्यक है। तुम सारी सेना को सम्हाले रहना और जब तक मैं न आ जाऊँ उज्जयिनी को लौटकर न जाना। अब की बार पत्रलेखा को भी अपने साथ लेते गये।

गन्धर्वनगर पहुँच कर राजकुमार कादम्बरी के निकट पहुँचे। इस बीच में कादम्बरी राजमहल को छोड़ आई थी और वन में एक कुटिया बनाकर रहने लगी थी।

उनकी पर्याप्त घनिष्ठता हो गई थी। दोनों का एक दूसरे पर अनुराग हो चला था। इसलिए उसे छोड़ने में उन्हें दुख तो होता था परन्तु क्या करें पिता की आज्ञा थी। इसलिए उन्हें उज्जयिनी को लौटकर जाना ही पड़ा। वैशम्पायन को उन्होंने सेना के साथ पीछे आने की आज्ञा दी और स्वयं अकेले ही चलने को तैयार हुए। अपने दास मेघनाद से बोले—मेघनाद, तुम यहीं पर ठहरो। कादम्बरी का दास केयूरक यहाँ आवेगा। उससे कहना कि मुझे घर जाने की शीघ्रता थी इससे कादम्बरी से भेंट न कर सका।

घने वनों को पार करते-करते कुछ दिनों के बाद वे अपने नगर में पहुँचे। उनके आने का समाचार सुनकर नगर-निवासियों को बड़ा आनन्द हुआ। महाराज तारापीड़ ने उन्हें गले से लगा लिया। वृद्ध पिता की आँखों में आनन्द के आँसू आ गये। इसके बाद राजकुमार माता के महल में गये और आदरसहित उन्हें प्रणाम किया। माता ने उनके मुख को चूमा और उन्हें शुभ आशीर्वाद दिया। इस प्रकार सबसे मिलने के उपरान्त उन्होंने भोजन किया और शयनागार में जाकर सो रहे। चारपाई पर लेटे-लेटे उन्हें कादम्बरी की मोहिनी मूर्ति ही दिखलाई पड़ती थी।

कुछ दिन बाद गंधर्वनगर से उनका दास मेघनाद आ पहुँचा। राजकुमार ने उससे कादम्बरी और महाश्वेता की कुशल पूछी। मेघनाद बोला—महाराज, राजकुमारी कादम्बरी सदैव आपकी याद में ही व्याकुल रहती है। दिन प्रति-दिन उनकी दशा बिगड़ती जा रही है। उन्हें ऐसी दशा

उनकी आँखों से भी अश्रुधारा बह चली। राजा ने फिर रानी से उनके रोने का कारण पूछा। परन्तु रानी फिर भी चुप रहीं और कुछ उत्तर न दे सकीं; रानी का यह दशा देखकर उनकी एक दासी राजा को उनके रोने का कारण बताने लगी।

दासी बोली—महाराज, आज शिवचतुर्दशी का दिन है। महारानीजी अभी-अभी शिवालय से महाभारत की कथा सुनकर आ रही हैं। उसी कथा में महारानीजी ने सुना कि निस्सन्तान पुरुष अथवा नारी को न तो इस लोक में सुख मिलता है और न मृत्यु के उपरान्त देवलोक में ही उनकी सद्गति होती है। निस्सन्तान प्राणी के सभी सुख व्यर्थ हैं। इसी कथा को सुनकर उनकी यह दशा हो रही है। मैंने उन्हें धैर्य दिलाने की लाख चेष्टाएँ की हैं, पर सब निष्फल हुआ। आप ही महारानीजी को समझाकर उनके क्लेश को हरिये।

दासी की बात सुनकर राजा कुछ न बोल सके। वे भी इन बातों को सुनकर काँप उठे और उनके मुँह से बात निकलनी दुर्लभ हो गई। किसी प्रकार धैर्य धारण करके वे रानी से बोले—देवी! यह भगवान् की लीला है। मनुष्य का इसमें चारा ही क्या? अतएव यह सब भगवान् की माया समझकर शोक करना व्यर्थ है। मनुष्य यत्न करने पर भी उन दुखों से छुटकारा नहीं पा सकता। तुम हृदय में धैर्य धारण करो और अपने दुख को भूल जाओ। विलाप करने से कोई लाभ नहीं। तुम्हें अब गुरु, ब्राह्मण, ऋषि, मुनियों और देवताओं की सेवा और भक्ति करनी चाहिए।

आने से बड़ा आनन्द हुआ। जब सब लोग यथास्थान बैठ गये तो केयूरक ने पत्रलेखा की ओर संकेत करते हुए कहा कि यह सुन्दरी राजकुमार की ताम्बूलवाहिनी पत्रलेखा है। राजकुमार इस पर विशेष प्रीति रखते हैं। पत्रलेखा ने हाथ जोड़कर महाश्वेता और कादम्बरी को प्रणाम किया। दोनों ने उसे अपने निकट ही आसन पर बिठा लिया।

चन्द्रापीड़ ने कादम्बरी से पूछा—देवी, तुम्हें क्या हो गया? तुम्हारा मुख मलिन और शरीर क्षीण हो रहा है। मुझे तुम्हारी यह दशा देखकर बड़ा दुख है। तुम्हें इतना दुख करने की क्या आवश्यकता है? यदि तुम चाहो तो मैं सदा तुम्हारी ही सेवा में प्रस्तुत रह सकता हूँ। तुम्हारे लिए मुझे कुछ भी करना दुर्लभ नहीं। चन्द्रापीड़ की बातें सुनकर कादम्बरी का सारा दुख दूर हो गया और हर्ष से बहुत देर तक सब लोग बातें करते रहे।

संध्या होने पर फिर चन्द्रापीड़ अपनी सेना में लौट गये। वहाँ आकर उन्हें महाराज तारापीड़ का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—"पुत्र, तुम्हें घर से निकले हुए बहुत दिन हो गये। सारी प्रजा को चिन्ता है। तुम्हारी माता के दुख की तो सीमा ही नहीं। इसलिए पत्र को पाते ही सेना को लेकर लौट आओ।"

पिता का पत्र पढ़कर चन्द्रापीड़ के हृदय को बड़ा दुख हुआ। एक ओर पिता की आज्ञा थी और दूसरी ओर कादम्बरी का प्रेम। कादम्बरी से दो-तीन दिन में ही

पाकर कादम्बरी को बड़ा दुख हुआ। वे इस समाचार को पाते ही अपने आश्रम में चली गईं। वे अपनी सखी मदलेखा से कह रही थीं कि जैसा चन्द्रापीड़ ने किया है ऐसा संसार में कोई नहीं कर सकता। वे अब किसी से बोलती नहीं हैं और रात-दिन रोया करती हैं। मैं उनकी यह दशा देखकर घबरा गया और इसी लिए दौड़कर आपके पास आया हूँ।

कादम्बरी के दुख का समाचार सुनकर चन्द्रापीड़ को मूर्च्छा आ गई। सेवकों ने उनके मुख पर जल के छींटे दिये—थोड़ी देर में उनकी मूर्च्छा जाती रही और वे दीर्घ श्वास लेते हुए बोले—"मैं यह नहीं जानता था कि कादम्बरी मुझ पर इतना प्रेम करती है। अब मैं क्या करूँ? कहीं मेरे बिना वह प्राण न त्याग दे। उसकी प्राण-रक्षा कैसे हो? केयूरक, मेरे जाने तक वह जीवित रह सकेगी या नहीं?" केयूरक बोला—"महाराज, आप इतना शोक न करें। व्याकुल होने से काम नहीं चलता। जीवन में आशा बड़ी वस्तु है। आप भी आशा का सहारा लेकर कादम्बरी से मिलने चलिए।"

केयूरक की बातें सुनकर राजकुमार तरह-तरह की चिन्ताओं में पड़ गये। माता-पिता की आज्ञा लिए बिना जाना वे उचित न समझते थे और उनसे आज्ञा लेने में लज्जा लगती थी। बहुत विचार करने पर भी वे कोई उपाय न सोच सके। उनके मित्र वैशम्पायन भी सेना के साथ पीछे रह गये थे इसलिए वे उनकी भी सलाह नहीं ले सकते थे। इस समय बार-बार वैशम्पायन की याद आने लगी। इसी

में छोड़कर आपको यहाँ आना उचित न था। वे आपके दर्शन की प्यासी हैं और इसीलिए उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। कृपा करके वहाँ चलिए और उनके दुख को दूर कीजिए।

कादम्बरी के विरह दुख की कथा सुनकर वे बड़े अधीर हुए और उसके पास पहुँचने के सुख-स्वप्न देखने लगे। इतने में ही उनकी माता के पास से एक दास आकर बोला—महाराज, आपको महारानीजी याद कर रही हैं। दास की बातें सुनकर उन्हें माता के स्नेह का स्मरण हो आया। वे उन्हें एक क्षण के लिए भी आँखों से ओझल नहीं करना चाहती थीं। उधर राजकुमार कादम्बरी से मिलने के लिए व्याकुल थे। इन बातों को विचारते-विचारते उन्हें बड़ा दुख हुआ, परन्तु कोई उपाय न सोच पाये। वे दिन-रात इसी चिन्ता में घुलने लगे।

कुछ दिन बाद एक दिन संध्या के समय वे सिप्रा नदी के किनारे भ्रमण कर रहे थे। अचानक घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई दिया। निकट आने पर पता चला कि कादम्बरी का दूत केयूरक कुछ गन्धर्वों को साथ लिये हुए चला आता है। केयूरक राजकुमार को देखकर घोड़े से उतर पड़ा और उसने उन्हें प्रणाम किया। राजकुमार को केयूरक के आने से बड़ा हर्ष हुआ।

केयूरक और उसके साथियों को लेकर वे अपने नगर में चले आये। वहाँ केयूरक को एकान्त में बुलाकर कादम्बरी का समाचार पूछने लगे। केयूरक बोला—राजन्, आपके बिना मिले ही उज्जयिनी लौट आने का समाचार

का विचार कर रहे हैं। यदि वैशम्पायन आ जायँ तो कादम्बरी से मेरा पाणिग्रहण हो सकता है। तुरन्त ही उन्होंने पिता से वैशम्पायन के पास जाकर उन्हें नगर में लाने की आज्ञा ली। राजा ने सहर्ष आज्ञा दे दी। अगले दिन थोड़ी सी सेना लेकर वे वैशम्पायन से मिलने के लिए चल दिये।

संध्या होते ही राजकुमार सेना में पहुँच गये। सेना में जाकर उन्होंने वैशम्पायन को जाकर खोजा। परन्तु वैशम्पायन का वहाँ कहीं पता न था। यह देखकर उन्हें बड़ा दुख हुआ। थोड़ी देर में सैनिकों के प्रधान ने उन्हें आकर प्रणाम किया। वे उससे पूछने लगे—कहो, हमारे मित्र वैशम्पायन कहाँ हैं? प्रधान बोला—महाराज, सुनिये। आपने उन्हें सेना के साथ आने की आज्ञा दी थी। वहीं उनसे किसी ने आकर कहा कि निकट ही आच्छोद सरोवर एक परम पुनीत तीर्थस्थान है। बहुत सुन्दर शिवजी का मन्दिर है। दूर-दूर से यात्री लोग दर्शन करने आते हैं। उन्होंने भी वहाँ जाने का विचार किया और हम लोगों को वहीं छोड़कर थोड़े से सैनिकों को लेकर वे आच्छोद सरोवर पर भगवान् शंकर के दर्शन करने चले गये।

आच्छोद सरोवर की शोभा देख मोहित होकर वे इधर-उधर घूमने लगे। फिर एक बेलों से छाई हुई एक कुटिया की ओर चल दिये। उसी कुटिया में एक शिला पड़ी थी। वे उस पर जाकर बैठ गये। उस समय ऐसा जान पड़ा मानों वे किसी भूली हुई वस्तु का स्मरण कर रहे

प्रकार चिन्ता करते-करते सारी रात बीत गई। उन्हें पल भर के लिए भी नींद नहीं आई।

सबेरे ही उन्होंने सुना कि सेना नगर से कुछ ही दूर पर आ पहुँची है। अब उन्हें आशा हो गई कि वैशम्पायन से शीघ्र ही उनकी भेंट होगी। परन्तु वे तो उनसे मिलने के लिए अधीर थे। अतः उन्होंने मार्ग में ही वैशम्पायन से मिलने का विचार किया। केयूरक और पत्रलेखा को उन्होंने अपने जाने का संदेश लेकर कादम्बरी के पास भेज दिया।

चलते समय वे पत्रलेखा से बोले—तुम कादम्बरी के पास जाकर मेरे आने का संदेश कहना। मैं वैशम्पायन को साथ लेकर कादम्बरी से मिलने को आता हूँ। घर आते समय मैं उनसे मिला नहीं, मुझसे बड़ी भूल हुई। उन्होंने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है। मैं हृदय से उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

(६)

पत्रलेखा और केयूरक को विदा करके राजकुमार चन्द्रापीड़ महाराज तारापीड़ के भवन में गये। मन्त्रिवर शुकनास भी वहीं बैठे थे। राजकुमार ने उन दोनों को प्रणाम किया। महाराज तारापीड़ मन्त्री से कहने लगे—मन्त्रिवर, राजकुमार चन्द्रापीड़ सब प्रकार सुयोग्य हो गये। अब मेरी इच्छा है कि यह राजमहल नववधू से सुशोभित हो। राजकुमार मन में सोचने लगे देखो कैसा विचित्र संयोग है। जिस समय मैं कादम्बरी के पास जाने की इच्छा कर रहा हूँ उसी समय पिताजी भी मेरे विवाह

लगे कि मैंने तो वैशम्पायन से कभी कोई दुर्वचन भी नहीं कहा। सदैव उन्हें अपना भाई समझा है। न जाने उन्हें क्या दुख हुआ जो वे उस निर्जन वन में ही रम रहे। उनके न आने से मुझे कितना दुख होगा, यह उन्होंने तनिक भी न सोचा।

इसी चिन्ता में निमग्न सारी सेना को साथ लेकर राजकुमार उज्जयिनी को लौट पड़े। मार्ग में से ही वे वैशम्पायन का पता लगाने जानेवाले थे, परन्तु माता-पिता तथा मन्त्री को वैशम्पायन का समाचार दिये बिना आच्छोद सरोवर की ओर जाना उन्होंने उचित न समझा। उनके बिना राजा, रानी, मन्त्री तथा उनकी पत्नी को धैर्य दिलाने-वाला कोई न रहता।

राजकुमार के नगर में पहुँचने से पहले ही वैशम्पायन का समाचार वहाँ पहुँच चुका था। सारे नगर में शोक के बादल छाये हुए थे। राजा और रानी महल में नहीं थे। वे मन्त्री तथा उनकी पत्नी को समझाने के लिए उन्हीं के महल में चले गये थे। राजकुमार भी मन्त्री के महल में गये। वहाँ चारों ओर से रोने का शब्द सुनाई दे रहा था। वैशम्पायन की माता अचेत हुई पड़ी थीं। राजकुमार को देखते ही महाराज तारापीड़ बोले—देखो राजकुमार, वैशम्पायन के वन में रह जाने से इन लोगों की क्या दशा है। तुमने ही तो कोई ऐसी बात नहीं कह दी, जिससे उसका मन दुखी हो गया हो।

राजा की यह बात सुनकर मन्त्री शुकनास बोले—धर्मावतार, यह कभी सम्भव नहीं हो सकता कि राजकुमार

हैं। बहुत देर तक वे इसी चिन्ता में बैठे रहे। उन्हें चिन्ता में बैठा देखकर हमें बड़ी चिन्ता हुई। फिर कुछ देर बाद हमने उनसे कहा कि महाराज, सरोवर का दर्शन हो चुका, अब उठ चलिये। व्यर्थ देर होती है, परन्तु उन्होंने हमारी बातों का कुछ उत्तर नहीं दिया और फिर उसी कुटिया में चारों ओर कुछ देखने लगे। चिन्ता से व्याकुल होकर हमने उनसे फिर चलने को कहा। वे बोले कि इस कुटिया ने हमारा मन मोह लिया है और अब यहाँ से जाने को जी नहीं चाहता। तुम लोग सेना के साथ नगर को लौट जाओ। मेरा चित्त शिथिल हो गया है और इन्द्रियाँ थकी जाती हैं। जाने की अब मुझमें सामर्थ्य ही नहीं है। यदि तुम लोग बलपूर्वक मुझको ले भी चलोगे तो मार्ग में ही मेरे प्राण निकल जायँगे। यह कहकर वे वहाँ से उठे और सरोवर के किनारे उस कुटिया के चारों ओर घूमने लगे, मानों किसी खोई हुई वस्तु की खोज कर रहे हों। इसके बाद हमने उन्हें बार-बार समझाया परन्तु वे कुछ बोले नहीं। तीन दिन तक इसी दशा में उनकी प्रतीक्षा करते हुए हम लोग सरोवर पर पड़े रहे। जब किसी तरह उनका चित्त स्थिर नहीं हो सका तो निराश होकर हम उन्हें वहीं छोड़कर इधर लौट आये। कई सिपाही उनकी रक्षा के लिए नियत कर आये हैं। हम नहीं कह सकते कि उनका चित्त वहाँ जाकर क्यों विचलित हो गया।

वैशम्पायन के विषय में यह आश्चर्य भरा समाचार सुनकर राजकुमार के दुख की सीमा न रही। वे सोचने

है। उसे रोती देखकर राजकुमार बहुत घबराये; उनका शरीर काँपने लगा। दुखी मन से महाश्वेता के निकट गये। तरलिका से महाश्वेता के रोने का कारण पूछने लगे। तरलिका तो चुप रही, परन्तु महाश्वेता बोली—"महाराज, आप मेरे दुख की पहली कथा सुन ही चुके हैं। उसी दुख से मेरा शरीर सूखकर काँटा हो गया था। वह दुख दूर नहीं हुआ था कि आज मैं एक दूसरे दुख का इतिहास लिये बैठी हूँ। कुछ दिन हुए मैंने आश्रम की ओर एक ब्राह्मण के युवा पुत्र को आते देखा था। वह ऐसे व्याकुल थे कि मानों किसी खोई हुई वस्तु को खोज रहे हैं। मेरे पास आकर परिचित की भाँति वह मुझे देखने लगे और मुझसे बोले—'सुन्दरी, तुम व्यर्थ में तपस्विनी बनी बैठी हो। तुम्हारी युवा अवस्था है और कोमल शरीर है। इस दशा में तुम्हें यह तपस्या करना उचित नहीं।'

"ब्राह्मणकुमार की ये बातें मुझे बहुत बुरी लगीं। मैंने तुरन्त ही तरलिका को बुलाया और कहा कि तरलिके, यह मनुष्य पापी जान पड़ता है। इसे तुम यहाँ से चले जाने को कह दो। तरलिका ने क्रुद्ध हो उससे कहा कि तुम यहाँ से चले जाओ और फिर कभी लौटकर यहाँ न आना। तरलिका की बातें सुनकर वह उस दिन तो वहाँ से चला गया। अगले दिन आकाश में चंद्रदेव निकले हुए थे और मैं उसी चाँदनी में पुण्डरीक के ध्यान में कुटिया के बाहर लेटी थी। दूर से मैंने उसे फिर अपनी ओर आते देखा। उसे आया देखकर मैं क्रोध से पागल हो उठी। वह भी

तारापीड़ ने कोई ऐसी बात की हो, जिससे वैशम्पायन के मन को ठेस पहुँची हो। राजकुमार ने तो उसे सदा अपने प्राणों से भी प्यारा समझा है। सच पूछिये तो यह सब उसने हमें दुख देने के लिए किया है। उसका जन्म ही हमें दुख देने के लिए हुआ है। उसने यह भी नहीं सोचा कि मैं अपने माता-पिता का एकमात्र पुत्र हूँ और मेरे बिना देखे उनकी क्या दशा होगी।

चन्द्रापीड़ इन लोगों के दुख को देखकर और भी दुखी हुए और वे बोले कि हे पिता, यह सब मेरा ही दोष है। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं स्वयं हो आच्छोद सरोवर पर जाऊँ और मित्र वैशम्पायन को लिवा लाऊँ।

यह कहकर माता, पिता, शुकनास और मनोरमा से बिदा ले इन्द्रायुध घोड़े पर चढ़कर राजकुमार चन्द्रापीड़ वैशम्पायन की खोज में चल दिये। मन में सोचते जाते थे कि पहले महाश्वेता के आश्रम में जाऊँगा। फिर मित्र से मिलूँगा, मुझे देखकर वे बड़े प्रसन्न होंगे और मेरे साथ अवश्य ही चले आयेंगे, यही सोच-विचार करते हुए कुछ दिन बाद वे आच्छोद सरोवर के निकट पहुँचे। सरोवर के पास झाड़ियों, कुञ्जों तथा गुफाओं में वैशम्पायन को खोजने लगे। परन्तु कहीं भी उनका पता न लगा। राजकुमार को बड़ी निराशा हुई। धैर्य धारण करने महाश्वेता के आश्रम की ओर गये और मन में विचार करने लगे कि सम्भव है उससे कुछ पता मिले। महाश्वेता के आश्रम में जाकर उन्होंने देखा कि वह फूट-फूटकर रो रही है और उसकी दासी तरलिका उसके निकट बैठी हुई

गई। इस प्रकार वहीं चन्द्रापीड़ की भी जीवनलीला समाप्त हुई।

उनके मृतक शरीर को देखकर महाश्वेता ज़ोर-ज़ोर से रो-रोकर विलाप करने लगी—"हे परमात्मा! यह क्या हुआ? कादम्बरी के प्राणवल्लभ की यह क्या दशा हुई? मुझ पापिन, मुझ दुरात्मिन ने यह क्या कर डाला? चन्द्रापीड़ कहाँ गये?" चन्द्रापीड़ के साथी भी घोर विलाप करके रोने लगे—उनके घोड़े की आँखों से भी आँसुओं की धारा बह चली।

(७)

चन्द्रापीड़ की सेविका पत्रलेखा तथा केयूरक ने कादम्बरी को महाराज के आने का संदेश पहुँचा दिया था। उनके आने का समाचार सुनकर कादम्बरी फूली न समाती थी। 'मेरे मन कछु और है कर्ता के कछु और' चन्द्रापीड़ तो संसार से विदा हो चुके थे। उनका मृतक शरीर महाश्वेता के आश्रम में पड़ा था। अपनी सखी महाश्वेता से इस शुभ सन्देश को कहने के लिए वह पत्रलेखा और अन्य सखियों को साथ लिये उसके आश्रम में पहुँची, परन्तु वहाँ दूसरा ही दृश्य था। एक बड़ी भारी शोक-मण्डली इकट्ठी हो रही थी। उसके प्राणप्रिय चन्द्रापीड़ का मृतक शरीर पड़ा हुआ था और महाश्वेता विलाप कर रही थी। यह देखते ही कादम्बरी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। पत्रलेखा भी अचेत हो गई।

थोड़ी देर में कादम्बरी की मूर्च्छा समाप्त हुई। चन्द्रापीड़ के शरीर को देख-देखकर वह अनेक प्रकार से विलाप करने

सुयोग्य तथा नीति-कुशल मन्त्री को पाकर राजा सब प्रकार से सुखी थे। परन्तु उन्हें संतान न होने के कारण सदैव चिन्ता रहती थी, क्योंकि उनके अगणित प्रयत्न करने पर भी कोई संतान उत्पन्न न हुई थी। यह चिन्ता उनके समस्त सुखों को फीका किये रहती थी। परन्तु रानी के हृदय को दुखित न करने के विचार से वे उनके सम्मुख इस अभाव की चर्चा नहीं करते थे।

एक दिन दोपहर के समय राजा महल में घुसे तो उन्होंने रानी को रोते हुए पाया। यह दृश्य देखकर राजा के दुःख

की सीमा न रही। वे तुरन्त ही रानी के पास जाकर उनके रोने का कारण पूछने लगे। राजा के कारण पूछने पर रानी और भी फूट-फूटकर रोने लगीं। राजा भी घबरा उठे और

उन्मत्त की भाँति मेरी ओर दौड़ा। अपनी ओर उसे

दौड़ता देखकर मुझे बड़ा भय लगा। उसके साथियों ने उसे बहुत रोका, परन्तु वह मेरी ओर आने से न रुका। घबराकर मैंने चन्द्रमा की ओर देखा, पुण्डरीक का नाम स्मरण किया और उसे शाप दे डाला—"जा दुष्ट, तू पक्षी हो जा। मेरे शाप के कारण वह तुरन्त ही गिर पड़ा। उसकी यह दशा देखकर उसके साथी चिल्ला उठे। बाद में उनसे मुझे विदित हुआ कि ब्राह्मणकुमार आपके मित्र वैशम्पायन थे।" इतना कहकर महाश्वेता फिर रोने लगी।

महाश्वेता की बातें सुनकर चन्द्रापीड़ शोक के समुद्र में डूब गये। चेतनाहीन होकर वे एक शिला पर गिर पड़े। उनकी आँखें बन्द हो गईं और नाड़ी शून्य हो

विवाह माधवीलता से कर देना। देखो, मेरे लगाये हुए अशोक के वृक्ष के पत्तों को कोई न तोड़े। कालिन्दी और परिहास-नामक तोते को उड़ा देना। मेरे प्यारे हरिण को किसी वन में छुड़वा देना। क्रीड़ा पर्वत पर मेरा जो चकोर का जोड़ा और हंस हैं, उन्हें कोई क्लेश न देने पावे। मेरे अंग के आभूषणों को तुम ले जाओ। दीन ब्राह्मणों को दे देना। घर पर मेरी वीणा है, और भी वस्तुएँ हैं। जिसे जो अच्छी लगे ले लेना, अब मैं बिदा होती हूँ। आओ, एक बार गले लग लूँ। फिर प्राणेश्वर के गले लगकर चिता की आग में जलकर शरीर को भस्म करूँगी।

मदलेखा तथा अन्य सखियों से ये बातें कहकर फिर वह महाश्वेता के गले लगकर कहने लगी—सखी! मुझे क्षमा करना। मेरा तुम्हारा सम्बन्ध आज से छूटा। जगत्-पिता परमात्मा से हमारी यही प्रार्थना है कि अगले जन्म में भी मुझे तुम-जैसी प्रिय सखी मिले।

यह कहकर वह चन्द्रापीड़ के दोनों चरणों को गोद में लेकर बैठ गई। चरणों को छूते ही एक उज्ज्वल ज्योति उत्पन्न हुई और चारों ओर प्रकाश हो गया। फिर यह आकाशवाणी हुई—"हे बेटी कादम्बरी, तेरे कर-स्पर्श से चन्द्रापीड़ का शरीर अविनाशी हो गया है। वे प्राणहीन हो गये हैं, परन्तु फिर जीवित हो जायँगे। इनका अग्नि-संस्कार न करना। जब तक जीवित न हों, पूरी-पूरी तरह से उनके शरीर की रक्षा करना।"

आकाशवाणी सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ और सब आकाश की ओर देखने लगे। महाश्वेता की मूर्च्छा

लगी। उसकी सखी मदलेखा उसे समझाकर धैर्य बँधाती हुई बोली कि हे सखी! क्या मर जाओगी? भगवान् की माया समझकर धैर्य रक्खो, संतोष करो।

यह सुनकर कादम्बरी हँसकर अपनी सखियों से कहने लगी—सखियो, मेरा हृदय तो पत्थर का है, यह नहीं फटेगा। मुझको मृत्यु कहाँ है? प्राणप्रिय के शव को देखती हुई भी मैं जीवित हूँ। मेरे मरने के लिए आज से अच्छा और कौन दिन आयेगा। जब मेरा प्राणप्यारा ही प्राण त्यागकर स्वर्ग चला गया तो मैं किसके लिए अब इन प्राणों को रक्खूँ? यही सुख से मरने का समय है, तुम रोको मत। यदि तुम सब मुझे प्यार करती हो तो घर जाकर मेरे माता-पिता को सान्त्वना देना कि कहीं वह मेरे शोक में प्राण न त्याग दें। आँगन में जो अमोला है उसक

उस मनुष्य ने महाश्वेता के निकट आकर कहा कि गन्धर्व-राज की पुत्री क्या तू मुझे पहचानती है ? महाश्वेता ने उन्हें तुरन्त ही पहिचानकर प्रणाम किया। वे उसके पुण्डरीक के मित्र कपिञ्जल थे। पुण्डरीक को जो देवता आकाश की ओर लेकर उड़ा था, उसी के पीछे-पीछे पुण्डरीक को छुड़ाने के लिए वे भी दौड़े थे। कादम्बरी और उसकी सखियाँ भी इस विचित्र घटना को देखकर उस मनुष्य के पास आकर खड़ी हो गईं।

फिर महाश्वेता ने कपिञ्जल से पूछा कि आप इतने दिन तक कहाँ रहे, अपने मित्र मेरे प्राणप्रिय पुण्डरीक को आपने कहाँ छोड़ा। कपिञ्जल ने उत्तर दिया—देवी, तुम्हें यहाँ विलाप करते छोड़कर मैं उसी देवता के पीछे उड़ता हुआ स्वर्गलोक चला गया। उस देवता ने चंद्रलोक में पहुँचकर एक मणियों की शय्या पर सखा के शरीर को रख दिया। फिर वह मेरी ओर देखकर बोला—हे सखे, मैं चन्द्रमा हूँ। संसार के हित के लिए उदय होकर अपना कार्य कर रहा था। तुम्हारे मित्र ने महाश्वेता के वियोग में प्राण त्यागते समय मुझे यह शाप दे डाला—"रे दुष्ट, तेरी शीतल किरणों के कारण ही मेरा विरह-दुख असहनीय हो गया है। जैसे मैं विरह में प्राण दे रहा हूँ, उसी प्रकार तू भी मेरी तरह बारम्बार पृथ्वी पर जन्म लेकर वियोग के दुःसह दुख भोगेगा।" मेरा कोई अपराध न था। पुण्डरीक के शाप से मुझे क्रोध आया। मैंने भी बदला लेने के लिए उसे शाप दे डाला कि तूने जैसा दुख इस बार भोगा है, ऐसा ही बार-बार भोगा करेगा।

भी दूर हुई। फिर वह चन्द्रापीड़ के घोड़े इन्द्रायुध के निकट गई। घोड़े के पास जाकर बोली—"स्वामी के मरने पर

तुम भी जीकर क्या करोगे?" यह कहकर उसने उस घोड़े को आच्छोद सरोवर में ढकेल दिया। घोड़ा डूब गया। तदुपरान्त एक जटाधारी मनुष्य सरोवर से निकला। उसके शरीर और जटाओं से पानी टपक रहा था। महाश्वेता उस मनुष्य को परिचित की भाँति देखने लगी।

बनकर जिस मनुष्य की सवारी में तू रहेगा, उसके मरने पर तू स्नान करेगा और तभी तू फिर से अपने इस स्वरूप को प्राप्त हो जायगा। तदुपरान्त मैंने विनय की कि महाराज, शाप के कारण चन्द्रमा पृथ्वी पर जन्म लेंगे, मैं चाहता हूँ कि मैं उन्हीं की सवारी में रहूँ।

यह सुनकर थोड़ी देर तक उसने ध्यान किया और फिर बोला—हाँ, उज्जयिनी के राजा तारापीड़ के यहाँ चन्द्रमा मनुष्य का अवतार लेंगे। जिस पुण्डरीक की मृत्यु के कारण तू व्याकुल है, वह भी राजा के मन्त्री शुकनास के यहाँ जन्म लेगा। जा, तू उसी राजकुमार की सवारी में रहेगा। उनकी बात समाप्त होते ही मैं समुद्र में गिर पड़ा और फिर घोड़ा बनकर किनारे पर आकर लगा। अब तुम समझ गई होगी कि राजकुमार चन्द्रापीड़ चन्द्रमा के अवतार हैं। तुम्हारी सखी कादम्बरी पर उनका स्नेह था, किन्तु शापवश उन्हें मरना पड़ा। वैशम्पायन नाम से पुण्डरीक ने शुकनास मन्त्री के घर जन्म लिया। पूर्वजन्म के प्रेम के कारण तुम्हें देखकर उनका अनुराग जाग उठा और वे तुमसे मिलने के लिए दौड़े आ रहे थे कि तुमने उन्हें शाप दे डाला। मैं कपिञ्जल हूँ और क्रोधी मनुष्य के शाप के कारण चन्द्रापीड़ का इन्द्रायुध घोड़ा बनकर रहता था। पुण्डरीक की मृत्यु होने पर जब महाश्वेता ने मुझे सरोवर में ढकेल दिया तो मैं फिर से अपने पुराने मनुष्य के रूप में बाहर निकल आया!

कपिञ्जल की बातें सुनकर महाश्वेता फिर रोने लगी। कपिञ्जल उसे धैर्य दिलाते हुए बोले—गन्धर्वपुत्री, यह सब

यह सुनकर चन्द्रमा आगे बोले—अब मेरा क्रोध शान्त हुआ तो मुझे पता चला कि जिस पुण्डरीक को मैंने इस प्रकार शाप दिया था, उसी को महाश्वेता ने अपना पति संकल्प किया है। महाश्वेता मेरी ही किरणों से उत्पन्न हुई गन्धर्वकुल की कुमारी गौरी की पुत्री है। तब मुझे बड़ा शोक और पश्चात्ताप हुआ। परन्तु शाप दे चुका था। जब तक पाप का प्रायश्चित्त न होगा तब तक पुण्डरीक का शरीर यहीं चंद्रलोक में रहेगा। मेरी अमृतमयी किरणों के कारण सड़ेगा नहीं। शाप का समय बीत जाने पर फिर प्राण आ जायँगे और यह भी जीवित हो उठेगा। इसी कारण मैं इसे उठा ले आया हूँ। महाश्वेता उनके वियोग में प्राणान्त न कर दे, अतः उसको भी आशा दे आया हूँ। तुम अब श्वेतकेतु ऋषि के पास जाकर यह वृत्तान्त वर्णन करो। वह कदाचित् कोई और उपाय बता देंगे।

चन्द्रमा की आज्ञानुसार मैं आकाश-मार्ग से श्वेतकेतु मुनि के पास चला जा रहा था कि मार्ग में मुझे एक महाक्रोधी मनुष्य विमान पर आता हुआ मिला। मैंने अनजान में उसकी राह काट दी। उसने अप्रसन्न होकर मुझे शाप दे डाला कि जा दुष्ट, तू अश्वकुल में जन्म लेगा। मैं हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हो गया और बोला कि क्षमा कीजिए। मैं विपत्ति का मारा हुआ हूँ। इसलिए मुझसे यह भूल हो गई। जान-बूझकर मैंने यह अपराध नहीं किया। कृपा कर शाप निवारण कीजिए।

मेरी प्रार्थना सुनकर उसने कहा कि शाप तो दिया जा चुका है। अब उसे लौटाया नहीं जा सकता। हाँ, घोड़ा

के पास जाकर तुम लोग केवल इतना ही कहना कि हमने राजकुमार को आच्छोद सरोवर पर देखा था, क्योंकि इस समाचार से उन्हें थोड़ा ही दुख होगा। यदि उन्हें इनके प्राणान्त का पता लग गया तो वह भी अवश्य ही प्राण त्याग देंगे।

दूत ने कहा—देवी, हमारे न जाने या न कहने से संवाद गुप्त नहीं रह सकता। राजकुमार के न पहुँचने से ही महाराज को बड़ा दुख हुआ। इसीलिए उन्होंने हमें भेजा है और यदि हम भी न पहुँचें तो उन्हें और भी दुख होगा। वहाँ पहुँचकर हमें यह दुख की कथा अवश्य ही सुनानी पड़ेगी। इसलिए हम नगर को अवश्य जायँगे और किसी-न-किसी प्रकार राजा-रानी और नगरनिवासियों को धैर्य बँधायँगे।

दुखी मन से दूत लोग उज्जयिनी की ओर चले। नगर में पहुँचते ही लोग उनसे तरह-तरह के प्रश्न करने लगे। कोई पूछता—राजकुमार कहाँ हैं? तुमने कहाँ देखा? नगर को कब आ रहे हैं? कोई वैशम्पायन की कुशलता पूछता। परन्तु रानी ने उनके दुखी चेहरे को देखकर ही समझ लिया कि कोई न कोई दुर्घटना घटी है। वे व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। दूतों के बिना सुनाए ही राजकुमार और वैशम्पायन की मृत्यु का समाचार सारे नगर में फैल गया। राजा, मन्त्री तथा प्रजा के लोग फूट-फूटकर रो रहे थे, क्योंकि दूतों से उनके पुनर्जीवित हो जाने का संवाद अभी किसी को न मिला था। रानी के करुणोत्पादक रोदन को सुनकर कठोर से कठोर मनुष्य का हृदय भी दहलता था।

तो शाप के कारण हुआ है, इसमें तुम क्या कर सकती हो ? तुमने पुण्डरीक को प्राप्त करने के लिए तपस्या आरंभ की है, उसी में लीन रहो। तपस्या से तुम्हें फिर उनके दर्शन मिलेंगे। यह कहकर कपिञ्जल आकाश को चले गये।

अब महाश्वेता और कादम्बरी के जीवन का एक ही मार्ग था। दोनों के प्राणप्रिय संसार से चल बसे थे, परन्तु उनके पुनर्जीवित होने की आशा थी, उसी आशा के सहारे वे दोनों तपस्या में लीन थीं। दासियों ने चन्द्रापीड़ के शरीर को एक शिला पर रख दिया।

उसी शिला पर वह शरीर रक्खा रहा, न सड़ा न गला। कादम्बरी रात-दिन चन्द्रापीड़ के शरीर को आगे रक्खे बैठी रही। दिन-प्रतिदिन उस मृतक शरीर में और चमक पैदा होने लगी। इससे कादम्बरी की आशालता लहलहा उठी। जो कोई इस शरीर को देखता उसी को उसके पुनर्जीवित होने की आशा हो जाती।

(८)

कुछ दिन जब राजकुमार भी उज्जयिनी नगरी को लौटकर न गये तो राजा तथा रानी की चिन्ता बढ़ गई। कुछ दूतों को उन्होंने राजकुमार की खोज के लिए भेजा। दूतों को जब उनके मर जाने का समाचार मिला तो वे शोक से व्याकुल हो गये और उनके शरीर को देखने के लिए आतुर हो उठे। दूत कादम्बरी की कुटिया में पहुँचे और राजकुमार का शरीर देखने लगे। कादम्बरी उन्हें तरह-तरह से समझाने लगी। कादम्बरी ने कहा—राजा

कुटिया बनाकर तपस्या करूँगा। चन्द्रापीड़ के पुनर्जीवित होने तक आप ही मेरे राज्य का प्रबन्ध करें।" राजा तारापीड़ की आज्ञा पाकर वे सब राजे वहाँ से चल दिये और राजा तारापीड़ तपस्वी का वेष धारण करके तपस्या करने लगे।

वैशम्पायन ने महाश्वेता के शाप के कारण एक तोते का जन्म लिया। जब यह तोता छोटा सा ही था इसके माता-पिता इसे छोड़कर मर गये। वह भूख-प्यास से व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जाबालि ऋषि के पुत्र हारीत उसे वहाँ से उठा लाये और उसका पालन करने लगे। ऋषिकुमार हारीत की कृपा से उसे अपने पुराने जन्म की सब बातें याद आ गईं। एक दिन वह ऋषि से आज्ञा लेकर महाश्वेता के आश्रम को चल दिया।

मार्ग में ही एक चाण्डाल ने उसे अपने जाल में फँसा लिया और वह उस तोते को लेकर अपने राजा की कन्या के पास ले गया। चाण्डालराज की कन्या ने उसे पिंजड़े में बन्द कर लिया। यह चाण्डालकन्या पहले जन्म में पुण्डरीक की माता थी। उसे किसी तरह से पुण्डरीक के पहले वैशम्पायन का जन्म लेने तथा फिर महाश्वेता के शाप के कारण तोता बनने की सब कथा ज्ञात थी। पुत्र को पास रखने तथा उसका उद्धार करने के लिए ही उसने तोते को अपने पास पकड़वाकर मँगवा लिया था। कुछ दिन बाद चाण्डालकन्या उस तोते को लेकर विदिशा नगरी के राजा शूद्रक के यहाँ पहुँची। प्राचीन संस्कारों के प्रभाव से यह तोता मनुष्य की वाणी बोलता था। इसने राजा

पर विचार करने लगे। राजा ने स्वप्न में देखा कि पूर्णिमा का चन्द्रमा रानी के मुख में प्रवेश कर रहा है। स्वप्न का सारा वृत्तान्त सुबह होते ही उन्होंने अपने बुद्धिमान् मन्त्री को कह सुनाया। मन्त्री ने कहा—महाराज, ज्ञात होता है कि आपकी मनोकामना पूरी होनेवाली है। निकट भविष्य में ही महारानीजी के गर्भ से एक सुन्दर और सुशील राजकुमार के जन्म होने के लक्षण हैं। भगवान् इस स्वप्न को सत्य सिद्ध करें। राजा ने इस स्वप्न का सारा वृत्तान्त और मन्त्री का बतलाया हुआ फल तुरन्त ही रानी को कह सुनाया। रानी के हर्ष की सीमा न रही और उन्हें पुत्रोत्पत्ति की आशा हो चली। एक दिन महाराज राज-सभा में विराजमान थे। इतने ही में दासी ने आकर

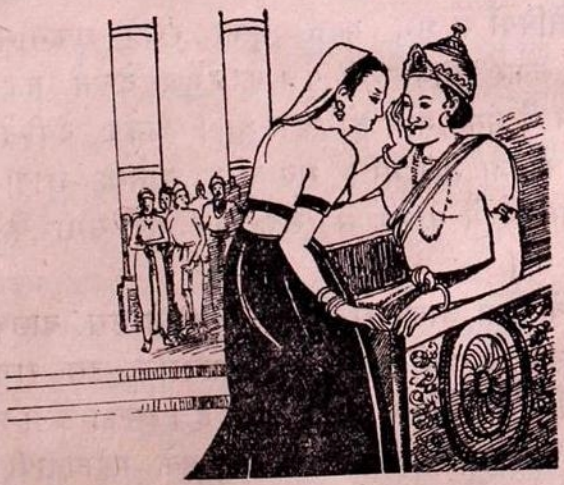

राजा के कान में कुछ समाचार सुनाया। राजा इस समाचार

थोड़ी देर में दूतों ने राजा को धैर्य बँधाते हुए चन्द्रापीड़ और वैशम्पायन के फिर से जीवित होने की आकाशवाणी की कथा कह सुनाई। राजा तथा अन्य लोगों को इस विचित्र समाचार को सुनकर बड़ा विस्मय हुआ और उनका अपार दुख कुछ कम हुआ। सबको बड़ा विस्मय भी हुआ। उसी समय मन्त्री शुकनास के स्मरण दिलाने से राजा को पुराने स्वप्न की याद आई। जब उन्होंने चन्द्रापीड़ के जन्म से पहले रानी के मुख में चन्द्रमा को प्रवेश करते देखा था। उन्हें विश्वास हो गया कि चन्द्रापीड़ अवश्य ही चन्द्रमा के अवतार हैं।

इसके बाद राजा-रानी, मन्त्री तथा उनकी पत्नी आच्छोद सरोवर की ओर चल दिये। कुछ ही दिन में वे सरोवर के तीर पर पहुँच गये। जब कादम्बरी और महाश्वेता को उनके आने का समाचार मिला तो उनका सोता हुआ दुख जाग उठा और वे मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। राजा आदि सभी लोगों को उन्हें मूर्च्छित देखकर बड़ा दुख हुआ और वे मन ही मन उनके पवित्र प्रेम की प्रशंसा करने लगे। राजकुमार के शरीर को देखकर रानी फिर विविध भाँति से विलाप करने लगीं। राजा आश्रम से बाहर चले आये।

आश्रम के बाहर आकर उन्होंने अपने साथ आये हुए राजाओं को बुलाकर कहा—"मित्रो! तुम लोगों ने मेरे साथ आकर बड़ा कष्ट उठाया। तुम्हारे साथ रहने के कारण मुझे अपना दुख असह्य न जान पड़ा। अब आप सब अपने-अपने देशों को जाइए। मैं तो यहीं वन में

तुम्हारे फिर से दर्शन किये।" रानी विलासवती ने भी राजकुमार का मुख चूमा और उनकी आँखों से प्रेम के आँसू निकल पड़े। मनोरमा और शुकनास को भी अपने पुत्र के पुनर्जीवित होने से अपार हर्ष हुआ!

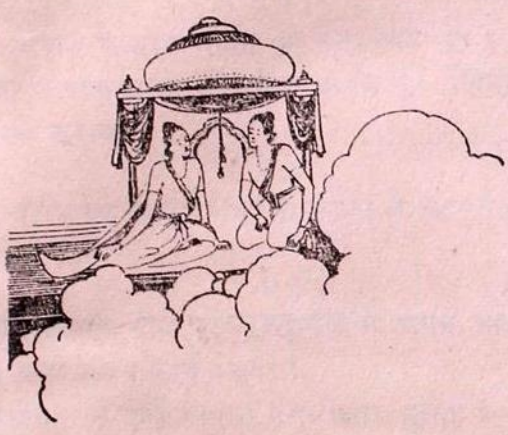

उधर जब गन्धर्व-नगर में यह समाचार पहुँचा तो वहाँ भाँति-भाँति के उत्सव मनाये जाने लगे। कादम्बरी के साथ चन्द्रापीड़ और पुण्डरीक के साथ महाश्वेता के विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। गंधर्वराज चित्ररथ राजकुमार चन्द्रापीड़ तथा पुण्डरीक को लेकर अपने नगर में पहुँचे। वहाँ बड़ी धूमधाम से कादम्बरी और महाश्वेता का विवाह हो गया। चन्द्रापीड़ कादम्बरी को लेकर अपने नगर में चले आये और पुण्डरीक भी उनके मन्त्री बनकर उन्हें राज-काज में सहायता देने लगे। इतनी लम्बी तपस्या के बाद महाश्वेता और कादम्बरी की इच्छाएँ पूर्ण हुईं।

को अपने पूर्वजन्म की सारी कथा कह सुनाई। शूद्रक उसके मुँह से उसका वृत्तान्त सुनकर बड़े प्रसन्न हुए।

कादम्बरी को तपस्या करते-करते बहुत दिन बीत गये। शाप के प्रभाव के अन्त होने का दिन भी निकट आ रहा था। वसन्तऋतु के दिनों में एक दिन उसने चन्द्रापीड़ के शरीर को भली भाँति स्नान कराया और भक्तिपूर्वक वह उनके गले में पुष्पमाला पहिराने लगी। वह उनका आलिङ्गन करना ही चाहती थी कि चन्द्रापीड़ जीवित हो उठे।

कादम्बरी भय और असीम आनन्द से काँप उठी। राजकुमार बोले—"प्रिये, क्यों डरती हो? देखो, मैं फिर जी उठा। इतने दिन तक विदिशा नाम की नगरी के शूद्रक राजा के रूप में था। आज उस शरीर को छोड़ दिया। तुम्हारी सखी महाश्वेता को भी आज ही अपने प्रिय से भेंट होगी, क्योंकि आज शाप समाप्त हो गया।

वे इतना कह ही रहे थे कि पुण्डरीक भी कपिञ्जल को साथ लिए चंद्रलोक से आते हुए दिखाई दिये। वहाँ आ पहुँचे। चन्द्रापीड़ ने उन्हें गले से लगा लिया, और बोले कि तुम्हारी मित्रता कभी छूट नहीं सकती। मैं तुम्हें वैशम्पायन ही समझूँगा।

थोड़ी देर में ही राजा-रानी, मन्त्री तथा उनकी पत्नी को राजकुमार और वैशम्पायन के फिर से जीवित होने का समाचार मिला। वे सब आश्रम की ओर गये। राजकुमार ने उन्हें मस्तक नवाकर प्रणाम किया। राजा ने प्रेम से गद्गद होकर उन्हें दोनों हाथों से पकड़ लिया और बोले—"बेटा, जन्मान्तर के पुण्यों के कारण मैंने आज

प्रश्न

(१)

(१) सब प्रकार का सुख होने पर भी महाराज तारापीड़ को किस कारण चिन्ता रहती थी ?

(२) उन्होंने क्या स्वप्न देखा ?

(३) वह कैसे सत्य सिद्ध हुआ ?

(२)

(१) वैशम्पायन के माता-पिता का क्या नाम था ?

(२) राजा ने राजकुमार और वैशम्पायन को शिक्षा का क्या प्रबन्ध कराया ?

(३)

(१) राज्याभिषेक से पूर्व मंत्री शुकनास ने चंद्रापीड़ को क्या उपदेश दिया ?

(४)

(१) राज्याभिषेक होने पर राजकुमार ने अपने नगर से चलकर क्या मुख्य कार्य किया ?

(२) महाश्वेता ने उन्हें अपनी क्या कथा सुनाई ?

(३) कादम्बरी के नगर में राजकुमार कैसे पहुँचे ?

(४) वहाँ उनके साथ क्या व्यवहार किया गया ?

(५)

(१) कादम्बरी के नगर के निकट से राजकुमार को क्या उज्जयिनी लौट जाना पड़ा ?

(२) लौटने पर उनकी क्या दशा रहने लगी ?

(३) कादम्बरी की क्या दशा हुई ?

(४) वैशम्पायन से मार्ग में ही भेंट करने का राजकुमार ने क्यों निश्चय किया ?

(६)

(१) सेना में आकर राजकुमार ने वैशम्पायन के बारे में क्या समाचार सुना ?

THIS EBOOK IS DOWNLOADED FROM
SHAAHISHAYARI.COM

LARGEST COLLECTION OF URDU
SHERS, GHAZALS, NAZMS AND EBOOKS.

महाराज तारापीड़, रानी विलासवती, मन्त्रिवर शुकनास और उनकी पत्नी मनोरमा उसी आच्छोद सरोवर के किनारे तपस्या करने लगे।

— —

(२) महाश्वेता ने उन्हें वैशम्पायन के विषय में क्या सुनाया ?
(३) इस समाचार को सुनकर राजकुमार की क्या दशा हो गई ?

(७)

(१) जब कादम्बरी सती होने को तैयार हुई तो क्या आकाश-वाणी हुई ?
(२) इन्द्रायुध को महाश्वेता ने सरोवर में क्यों ढकेल दिया ?
(३) सरोवर से वह किस रूप में निकला ?
(४) उसने महाश्वेता और कादम्बरी को क्या कथा कहकर सुनाई ?
(५) इस कथा को सुनकर कादम्बरी ने क्या करना निश्चय किया ?

(८)

(१) राजा तारापीड़ ने राजकुमार की मृत्यु का संवाद किससे सुना ?
(२) वे सरोवर पर आकर क्या करने लगे ?
(३) वैशम्पायन महाश्वेता के शाप के कारण क्या बन गया था ?
(४) चंद्रापीड़ शाप के दिनों में कहाँ और क्या बनकर रहे थे ?
(५) महाश्वेता ने पुण्डरीक को और कादम्बरी ने चन्द्रापीड़ को कैसे पाया ?

करने के लिए काम

इस उपन्यास के मुख्य-मुख्य पात्रों की सूची बनाकर प्रत्येक का संक्षेप में परिचय लिखो।

सामाजिक शिक्ष[illegible]क्षित प्रौढ़ों

बाल-छात्राओं के पढ़ने योग्य सहायक पुस्तकें

नल-दमयन्ती	=
सावित्री-सत्यवान्	।)
देश-देश की कहानियाँ प्रथम भाग	॥)
बाल-हितोपदेश	।=)
बाल-हरिश्चन्द्र	॥)
महारानी पद्मिनी	॥)
बाल-महाभारत	॥)
बाल-शकुन्तला	।)
बाल-जयद्रथवध	।)
बाल-सुदामाचरित्र	।=)
देश-देश की कहानियाँ द्वितीय भाग	॥)
बाल गंगावतरण	॥)
बाल-शेक्सपियर	॥)
बाल-कादम्बरी	॥)
बाल जवाहरलाल नेहरू	२॥)
बाल-रामायण	३)
सुबोध पंचतंत्र	१॥)
बाल-पृथ्वी वल्लभ	१।)
बाल-सोमनाथ	१।)
बाल-लोमहर्षिणी	१।)
बाल-परशुराम	१।)
बाल-कथाकौमुदी	॥=)
प्यारी कहानियाँ	॥=)

बाल रवीन्द्रनाथ

कवि-सम्राट् स्वर्गीय श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की चार सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ सरल भाषा में पुनःकथित हैं। प्रत्येक कहानी में चित्र और साथ में कवीन्द्र रवीन्द्र का संक्षिप्त परिचय भी है। मूल्य १॥) डेढ़ रुपया।

मिलने का पता

(राजा) रामकुमार बुकडिपो

हजरतगंज, लखनऊ.

मुद्रक—श्रीमुन्नूलाल श्रीवास्तव (राजा) रामकुमार-प्रेस लखनऊ.

इनकी सेवा करने से भगवान् अवश्य ही प्रसन्न होते हैं और सम्भव है, प्रसन्न होकर हमारी मनोकामना पूरी करें। यदि हमारी मनोकामना पूरी भी न हुई तो हमारा परलोक तो अवश्य ही सुधरेगा।

राजा की बातें सुनकर रानी के हृदय को बहुत शान्ति मिली। वे तुरन्त ही वहाँ से उठ बैठीं और स्नान आदि करके भगवान् के भजन में लग गईं। प्रतिदिन वे नित्य सबेरे उठकर ईश्वर-भजन करतीं। दीन-हीन जनों को भोजन-वस्त्र दिया करती थीं। साधु-संतों के सत्कार में ही वे अपना सारा समय बिताया करतीं। उनकी श्रद्धा और भक्ति से सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें शुभ आशीर्वाद दिया करते थे।

एक दिन रात को राजा ने एक विचित्र स्वप्न देखा। वे

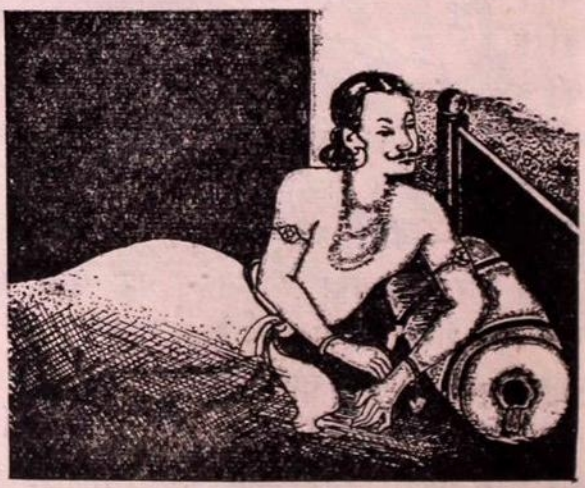

तुरन्त ही चकित होकर उठ बैठे और स्वप्न की विचित्रता

का वर्णन कर रहे थे उसी समय एक सेवक ने आकर उनकी पत्नी मनोरमा के गर्भ से पुत्र होने का समाचार सुनाया। इस समाचार को सुनकर राजा-रानी, मंत्री तथा अन्य उपस्थित जनों को अपार हर्ष हुआ। राजा बोले— मन्त्रिवर, आनन्द के समय में और भी आनन्ददायी बातें होती हैं। चलो, आपके महल मे चलकर आपके पुत्र का मुख भी देखें और अपने बढ़ते हुए आनन्द को बढ़ाएँ। यह कहकर राजा मन्त्री के घर की ओर चल दिये मन्त्री के पुत्र को देखकर राजा को बहुत ही आनन्द हुआ। कुछ दिन बाद दोनों का नामकरण-संस्कार हुआ। पण्डितों ने राजकुमार का नाम चंद्रापीड़ रक्खा और मन्त्री-पुत्र का वैशम्पायन।

धीरे-धीरे दोनों बालक बढ़ने लगे। राजा ने उन्हें सुयोग्य और गुणवान् बनाने के लिए एक पाठशाला खुलवाई। उसमें विद्वान् पण्डितों को रखकर दोनों कुमारों की शिक्षा आरम्भ कराई। दोनों कुमार बड़े बुद्धिमान् थे। शीघ्र ही वे दोनों समस्त विद्याओं तथा व्यायाम की कलाओं में निपुण हो गये। उनके शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलवान् होकर चमकने लगे। घुड़दौड़ में वे ऐसे निपुण हो गये कि नटखट से नटखट घोड़ा उनकी टाँगों के नीचे आकर सीधा हो जाता। दोनों कुमारों में परस्पर गहरी मित्रता भी थी। यह देखकर राजा तथा मन्त्री दोनों मन-ही मन और भी प्रसन्न होते। व्यायाम-विद्या को छोड़कर और सब विद्याओं में वैशम्पायन राजकुमार के समान ही थे।

को सुनते ही अत्यन्त प्रसन्न हुए। चतुर मन्त्री ने दासी के कहने के ढंग से तथा राजा के मुख की प्रसन्नता से जान लिया कि रानी ने गर्भ धारण किया है। राजा तुरन्त ही रनिवास में पहुँचे और रानी के मुख से गर्भवती होने का समाचार पाकर फूले न समाये। मन्त्री तथा अन्य दरबारियों के हर्ष का भी वारापार न रहा।

रानी तथा उनकी सहेलियाँ अत्यन्त मुदित रहने लगीं। समय आने पर रानी के गर्भ से एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र का जन्म हुआ। नवजात शिशु का मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर था। रानी के मुख में चन्द्रमा के प्रवेश करने का राजा का स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ।

(२)

ज्योतिषियों से शुभ मुहूर्त्त पूछकर राजा शुकनास मन्त्री को साथ लेकर रनिवास में पुत्र का मुख देखने को चले। सारे महल में मंगल गान हो रहा था। अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जा रही थी। सब ओर आनन्द छाया हुआ था। राजमहल में बालक से लेकर बूढ़े तक सभी के चेहरे खिले हुए थे।

रानी के पास जाकर राजा तथा मन्त्री ने उस बालक को देखा। देखते ही मन्त्री कहने लगे—महाराज, इस राजकुमार में चक्रवर्ती राजा होने के सभी लक्षण हैं। इसका ऊँचा ललाट, बड़े-बड़े नेत्र, ऊँची नाक आदि सभी इसके महाप्रतापी होने के चिह्न हैं।

जिस समय मन्त्री इस प्रकार राजकुमार के शुभ लक्षणों